महाकविमाघविरचितं

# शिशुपालवधम्

(प्रथमसर्गः)

व्याख्याकार

कैलाशचन्द्र त्रिवेदी

महाकविमाघविरचितं

# शिशुपालवधम्

(प्रथम सर्गः)

व्याख्याकार

कैलाशचन्द्र त्रिवेदी

Kala Mandir Distributors
1680/4, 1st Floor, Mehta Market,
Nai Sarak, Delhi-110006 (9999369804, 805)
No Return / No Exchange

हंसा प्रकाशन, जयपुर

# भूमिका
# महाकवि माघ

संस्कृत साहित्य विश्व का सबसे समृद्ध साहित्य है। यह साहित्य सागर इतना विशाल और इतना अथाह है कि जहाँ भी खोजिये वहीं मोती अवश्य मिल जाते हैं। इस साहित्य के सर्जक और अलंकृत करने वाले विद्धानों ने सम्पूर्ण भावना से सदैव कविता कामिनी को सँवारने का ही कार्य किया। कहीं साहित्य में कवि भारवि का अर्थ गौरव प्रतिष्ठित है, कहीं दण्डी का पद लालित्य साहित्य को समृद्ध बना रहा है। इन्हीं साहित्य सर्जकों, सरस्वती के सपूतों में महाकवि माघ का महत्व भी कम नहीं आंका जा सकता।

समय के साथ–साथ परिवर्तन होता रहता है और यही परिवर्तन साहित्य को भी प्रभावित करता है। यही परिवर्तन ही तो जीवन है, स्वयं कवि के शब्दों में "क्षणे क्षणे यत्रवतामुवैति तदेवरूपं रमणीयताया:" इसी नवीनता का नाम ही परिवर्तन है। इसी आधार पर कालिदास के बाद भाव पक्ष की अपेक्षा कलापक्ष को विशेष महत्व दिया गया। कलापक्ष को महत्व देने वालों में महाकवि भारावि का स्थान सर्वोपरि है या यूं कहना अनुचित नहीं होगा कि कलापक्ष को जन्म भारवि की देन है। इसके बाद अन्य विद्धानों ने इसे प्रश्रय दिया जिनमें भट्टि का नाम विशेष महत्व रखता है, महाकवि माघ भी इससे अछूते नहीं रहे। साहित्य में कलापक्ष भारवि के समय से अन्य कवियों की कलम पर आरूढ़ होकर महाकवि माघ के समय चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। अपनी अलंकृत शैली एवं काव्य के अन्य गुणों के कारण माघ संस्कृत साहित्य के अत्यन्त लोकप्रिय कवि हैं।

यमक अलंकार का एक उदाहरण माघ काव्य के षष्ठ: सर्ग से उद्धृत है—

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपराग परागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥६/२/

वृहत्त्रयी के रचयिताओ में महाकवि माघ का तथा उनकी कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। कवि का वास्तविक नाम क्या था, यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों का यह मत है कि भारवि की प्रतिस्पर्धा से कवि ने अपना नाम माघ रखा होगा क्योंकि भारवि का अर्थ सूर्य की कान्ति होता है और माघ मास में सूर्य का तेज मन्द हो जाता है। कारण यह हो सकता है कि माघ को पढ़ने के बाद भारवि का महत्व कम हो जाता है। कुछ विद्धानों के अनुसार माघ का अर्थ दोष रहित माना गया है। तदनुसार दोष रहित व्यक्ति माघ और दोष रहित काव्य माघ हो सकता है, किन्तु यह तो निर्विवाद सत्य है कि कल्पना के क्षेत्र में माघ की तुलना नहीं है। कवि की अपूर्व कल्पना के आधार पर ही इन को घण्टामाघ की उपाधि से विद्धानों ने विभूषित किया है। इस विषय में काव्य के चतुर्थ सर्ग का बीसवाँ श्लोक द्रष्टव्य है

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वय परिवारित वारणेन्द्रलीलाम् ॥

अर्थात् लम्बी-लम्बी ऊपर की ओर रस्सी के समान फैलती गई किरणों वाले सूर्य के उदय तथा चन्द्रमा के अस्त होते रहने पर यह पर्वत (रैवतक) नीचे की ओर लटकती हुई दो घण्टाओं से बेष्टित गजराज के समान शोभा पा रहा हैं।

कवि का एक मात्र महाकाव्य शिशुपाल वध है, इसके अतिरिक्त अन्य श्लोक अवश्य किंवदन्तियों के माध्यम से उपलब्ध हैं, किन्तु शिशुपालवध महाकाव्य एक अनूठी ही कृति है जिसमें कवि ने अपना सम्पूर्ण पाण्डित्य पिरो दिया है, जिससे कवि स्वयं और उनका महाकाव्य विद्धन्मण्डली में अत्यन्त लोकप्रिय है।

**जीवन-परिचय**

संस्कृत साहित्य के उद्‌भट विद्धानों के जीवन वृत्त अधिकांश रूप में तमसावृत्त ही हैं। जीवन वृत्त का ज्ञान प्रायः दो प्रकार से होता है (१) अन्तः साक्ष्म और (२) बाह्य साक्ष्म। प्रायः विद्धानों ने अपनी कृतियों में अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ लिखा ही नहीं या बहुत संक्षिप्त ही लिखा जो उनके जीवन की सम्पूर्ण जानकारी नहीं दे पाता परन्तु माघ का संक्षिप्त वंश-वर्णन काव्य के अन्त में दिये गये कुछ श्लोकों से मिलता है। कुछ विद्धान इन्हें प्रक्षिप्त मानने का प्रयास करते हैं, किन्तु यदि स्वयं कवि के शब्द हैं तो वंश-वर्णन निम्न प्रकार है—

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य वभूव राजा।
असक्तदृष्टिविरिजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेव नामा ॥
तस्याभजद्धत्तक इत्युदात्तः क्षत्री मृदुधर्मपरस्तनूजः ।
यं वीक्ष्यवैंयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहिजनैः प्रतीये ॥

सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्धमानन्दमाजा जनितं जनेन।
यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयोमुख्य: सतां गौणमवाप नाम ॥
श्री शब्द रम्यकृत सर्ग समाप्ति लक्ष्म, लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तन मात्रचारु।
तस्यात्मज: सुकविकीर्त्तिदुराशपाद: काव्यं व्यधन्त शिशपालवधामिधानम् ॥

सरांश यह है कि कवि के पितामह किसी वर्मल नाम के राज के मंत्री थे। इन्हीं सुप्रभदेव (पितामह) के गुणवान धार्मिक एवं उदार दत्तक नाम का पुत्र हुआ। इन्हीं दत्तक के पुत्र माघ ने शिशुपाल नामक महाकाव्य की रचना की, किन्तु मात्र इससे ही कवि के जीवन पर स्पष्ट प्रकाश नहीं पड़ता।

उपर्युक्त श्लोकों के आधार पर यह अवश्य जानकारी मिल जाती है कि कवि माघ सम्पन्नता में पले और समृद्ध जीवनयापन किया। इनकी दानशीलता के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। भोज प्रबन्ध के अनुसार माघ कवि राजा भोज के परममित्र एवं राजकवि थे। एक बार सम्पूर्ण सम्पत्ति दान दे देने के कारण विपन्नता में जी रहे माघ कवि ने याचकों को देने के लिए धन प्राप्ति हेतु एक श्लोक लिखकर अपनी पत्नी को राजा भोज के यहाँ भेजा जो श्लोक यह था—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं त्यजतिमुदमुलूक: प्रीतिमांश्चक्रवाक:।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तंहतविधिलासितानांहिविचित्रोविपाक: ॥

इस श्लोक को पढ़कर राजा भोज ने प्रभूत धन दिया किन्तु मार्ग में याचकों द्वारा माघ की प्रशंसा सुनकर कवि पत्नि ने सम्पूर्ण धन दान कर दिया और रिक्तहस्त घर लौटी। सुना जाता है कि माघ ने बड़ी दयनीय अवस्था में प्राण त्यागे। प्रबन्ध चिन्तामणि में भी ऐसी किंवदन्तियाँ उपलब्ध हैं। भोज का समय ग्यारवीं शती का है। अत: राजाभोज के साथ माघ को जोड़ना इतिहास की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण एवं तथ्यों से परे है। किंवदन्तयाँ महापरुषों, महकवियों आदि की प्रशंसा में प्रशंसकों द्वारा घढ़ी जाती हैं और प्रचारित होती हैं।

माघ का जन्म गुजरात प्रान्त के भीनमाल नगर में हुआ जो अब राजस्थान के जालोर जिले में स्थित है। यह उस समय गुर्जर प्रदेश का विद्या केन्द्र था। उसकी प्रशंसा चीनी यात्री ह्वेनसांग ने की है। शिशुपालवध की कुछ हस्तलिखित प्रतियों के अन्त में यह लिखा है कि "इति श्री भिन्नमालवास्तव्यदत्तकसूनोर्महा वैयाकरणस्य माघस्य कृतौ। शिशुपालवध महाकाव्ये...। यही भिन्नमाल कालान्तर में भीनमाल तथा श्रीमाल हो गया। श्रीमाल के निवासी ब्राह्मण गुर्जर तथा राजस्थान दोनों प्रान्तों में मिलते हैं। जिस रैवतक पर्वत का वर्णन कवि ने अपने काव्य में किया है वह गुजरात प्रान्त के ही अन्तर्गत माना जाता है।

इस विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि माघ का जन्म भीनमाल नामक स्थान पर हुआ। इनके पितामह सुप्रभदेव मंत्री थे और इनके पिता दत्तक प्रतिष्ठित विद्वान थे। माघ कवि का जन्म सम्पन्नता में हुआ, ये राज्याश्रित कवि रहे होंगे, इसमें सन्देह नहीं क्योंकि इसका पता इनके वर्णनों से चल जाता है। माघ के जीवन वृत्त के विषय में इससे अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

**माघ का स्थिति काल**

किंवदन्तियों पर विचार करें तो माघ कवि का सम्बन्ध धारानरेश राजाभोज से जोड़ा जाता है किन्तु यह सर्वथा असंगत है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें कुछ भी तथ्य नहीं हैं। भोज का समय ग्यारवीं शती का है परन्तु इनके पूर्व के ग्रन्थों में माघ का उल्लेख मिलता है, अतः माघ का समय ग्यारवीं शती मानना सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है।

अन्य बाह्य साक्ष्यों के आधार पर जब हम देखते हैं तो माघ का समय आठवीं शती से पूर्व का सिद्ध होता है। श्री रामावतार शर्मा, मैकडानल तथा वेवर आदि विद्धान माघ का समय नवम् शतक तक मानते हैं परन्तु यह मत उचित नहीं है क्योंकि सोमदेव ने अपने ८५० ई. के यशतिलक चम्पू में माघ का उल्लेख किया है अतः इससे पूर्व होना पूर्णतया निश्चित है। दूसरा प्रमाण यह है कि, आचार्य आनन्द वर्द्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में माघ के निम्न श्लोक को उद्धृत किया है जिनका समय ८५० ई. के लगभग स्वीकार किया गया है। आचार्य वामन ने भी इस श्लोक को उद्धृत किया है और इनका समय आठवीं शती का उत्तरार्ध माना जाता है, माघ के इस पद्य को उद्धृत किया है

रम्या इति प्राप्तवतीः पताका रागं विविक्ता इति वर्धयन्तीः।
यस्यामसेवन्तनमद्वलीका : समंवधूभिर्वलभीर्युवानः ॥ ३/५३

वामन ने इस पद्य को तुल्ययोगिता के प्रसंग में उद्धृत किया है। आनन्द वर्द्धन ने भी इस पद्य को उद्धृत किया है।

उपर्युक्त प्रमाण के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि वामन तथा आन्नदवर्द्धनाचार्य के समय तक माघ साहित्यकाश में चमकते सितारे थे। इन विद्धानों ने माघ के पद्यों को उद्धृत किया था। अतः माघ निश्चित रूप से इन दोनों से पूर्ववर्ती थे।

डा. कीजल हार्न को राजपूताने के वसन्तगढ़ नामक स्थान में एक शिलालेख प्राप्त हुआ, जो वर्मलात राजा द्वारा लिखा गया बताया जाता है। इसका समय ६२५ ई. है। माघ के पितामह सुप्रभदेव के आश्रयदाता ही इसे माना जाता है। इसके आधार पर सुप्रभदेव का समय ६२५ ई. का ही है और इनके पौत्र माघ को ५०, ६० वर्ष पीछे मान लेने पर माघ का समय सातवीं शती का उत्तरार्ध स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है।

## माघ का कृतित्व

शिशुपालवध की कथा का आधार महाभारत के सभापर्व अध्याय ३३ से ४५ तक की कथा है। महाकवि माघ ने अपनी नवीन उद्‌भावनाओं से इस छोटी सी कथा को एक बीस सर्ग के महाकाव्य का रूप दिया है। कथावस्तु दो प्रकार की होती है (१) अधिकारिक (२) प्रासंगिक। आधारिक वस्तु का साक्षात् सम्बन्ध नायक तथा काव्य के फल से होता है, परन्तु प्रासंगिक वस्तु में नायक से भिन्न किसी अन्य का वृत्त रहता है, जिसका परम्परानुसार सम्बन्ध काव्य के फल से रहता है। शिशुपालवध महाकाव्य में शिशुपाल का वध ही अधिकारिक कथा है, जिसका अनेक प्रासंगिक वर्णनों द्वारा विस्तार किया गया है।

इस महाकाव्य की कथा को देखने पर प्रतीत होता है कि यह घटना–प्रधान महाकाव्य है। घटना–प्रधान काव्यों में कवि की दृष्टि किसी मुख्य घटना पर होती है और उसका समस्त वस्तु विन्यास उस घटना पर ही केन्द्रित रहता है। इस घटना-प्रधान शिशुपालवध महाकाव्य में शिशुपाल वध ही मुख्य घटना है, अन्य सभी प्रासङ्गिक वर्णन उसके पोषक के रूप में है।

यद्यपि कथानक छोटा है फिर भी महाकवि माघ ने अपना सम्पूर्ण पाण्डित्य इसमें भर दिया है। इस महाकाव्य में कालिदास का अलंकार गुम्फन भारवि का अर्थ गौरव और दण्डि का पदलालित्य तीनों का ही समावेश है इसीलिए तो कहा है कि "माघे सन्तित्रयो गुणाः"। अर्थ गौरव और अलंकार संयोजन का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

> म्रहीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम्।
> प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव॥ २/७५

इस श्लोक में वाणी और साड़ी का वर्णन किया है जहाँ पूर्णतया श्लेष का शुद्ध विषय सम्भव होने से सम्पूर्ण अलंकारों को बाधित करते हुए उपमा अलंकार को "इव" शब्द के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। अर्थ की दृष्टि से भी यह पद्य महत्वपूर्ण है। शिशुपालवध काव्य में कवि ने इसी प्रकार के बहुत से पद्य रचकर भण्डार भर दिये हैं। जो तीनों गुणों से युक्त हैं।

यहाँ महाकवि माघ प्रबन्ध काव्य की इतिवृत्तनिर्वाहकता में सफल नहीं कहे जा सकते हैं। इस ओर सम्भवतया कवि का ध्यान भी नहीं है। मूल कथा प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्दश सर्ग से बीसवें सर्ग तक पायी जाती है। इसमें भी कई अप्रासांगिक वर्णनों का कवि ने विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। शेष तृतीय से त्रयोदश सर्ग तक का वर्णन आनुषङ्गिक है, जिसका आवश्यकता से अधिक विस्तार रसज्ञों एवं समालोचकों को अत्यन्त अखरता है। यह कथा के प्रवाह को अवरुद्ध कर देता है। वीर-रस प्रधान काव्य के पूरे ६ सर्ग श्रृंगार वर्णन, श्रृंगार-लीलाओं का वर्णन वीर–रस पर भारी पड़ता दिखाई

देता है। काव्य के मध्य भाग को पढ़ने पर पाठक यह समझने लगता है कि यह श्रृंगार का ही काव्य है। वस्तुतः यहाँ श्रृंगार रस वीर रस के रसास्वाद में बाधक बन गया है।

प्रबन्ध काव्य में सम्बन्ध निर्वाह का महत्वपूर्ण स्थान है। इस बात को स्वयं कवि ने अंगीकार किया है

बह्वपि स्वेच्छयाकामं प्रकीर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थ सम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः॥ २/७३॥

अर्थात् इच्छानुसार बहुत सी फुटकर बातें सरलता से कही जा सकती हैं, किन्तु ऐसी बात को कहना कठिन है, जिसमें पदार्थों की सगंति अविच्छिन्न रहे।

वस्तुतः मुख्य घटना के साथ प्रासंङ्गिक बातों का वर्णन वहीं तक उचित है जहाँ तक वे प्रासङ्गिक वर्णन मुख्य घटना को रोचक बनाकर पाठकों को भाव विभोर करके रसानुभूति में सहायक सिद्ध हो सकें। अतः ये वर्णन पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये नहीं होने चाहिये और उनका विस्तार भी मुख्य घटना के अनुकूल होना चाहिये, अत्यधिक नहीं। माघ का यह प्रासंङ्गिक वर्णनों का अत्यधिक विस्तार कथा के प्रवाह में बाधक होकर रसास्वादन में भी बाधक बन गया है।

**माघ की भावाभिव्यंजना और रसाभिव्यक्ति**

शिशुपाल वध का प्रधान रस वीर रस है। श्रृंगार तथा रौद्रादि रस उसी में अंग बनकर समविष्ठ है। इस वीर-रसपूर्ण घटना प्रधान काव्य में अप्रासंङ्गिक श्रृंगार लीलाओं के ६ सर्गों के विस्तृत वर्णन ने वीर-रस को ढक लिया है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि माघ वीर-रस के सफल रचनाकार नहीं हैं। माघ वीर तथा श्रृंगार दोनों के ही सफल चित्रकार हैं। यहाँ उदाहरण के लिए कुछ पद्य दिये जाते हैं। वीर-रस का उदाहरण देखिये—

आयन्तीनामविरतरंय राजकानीकिनीना—
मित्थं सैन्यैः सममलघुभिः श्रीपतेरुमद्भिः।
आसीदोधैर्मुहुरिव महद्वारिधेरापगानां
दोलायुद्धं कृतगुरुतर ध्वानमौद्धव्य भाजाम्॥ १८/८०॥

इस प्रकार निरन्तर वेग से दौड़ती हुई एवं उद्धृत (विपक्षी) राजाओं की सेनाओं का बड़—बड़े तरंगो वाली भगवान श्री कृष्ण की सेनाओं के साथ अत्यन्त कोलाहल के साथ युद्ध इस प्रकार होने लगा, जिस प्रकार निरन्तर वेग से आगे बढ़ती नदियों का समुद्र के बड़े—बड़े तरंगों वाले प्रवाहों से गम्भीर ध्वनि के साथ संघात (टकराव) होता है।

शिशुपालवध काव्य का अष्टादश सर्ग युद्ध वर्णनों के पूर्व साज-सज्जा, सेनाओं का प्रयाण, तलवारों की चमक, हाथियों की गर्जना (चिंघाड़ना) तथा योद्धाओं का द्वन्द्व युद्ध आदि वर्णनों से प्रशंसनीय है। माघ के पद-विन्यास की धीर और गम्भीर गति उनके वर्णन में एक अपूर्व शोभा को जन्म देती है।

माघ का मन वीर–रस की अपेक्षा श्रृंगार के वर्णन में रमता हुआ प्रतीत होता है। किन्तु उन्होंने सम्भोग श्रृंगार का ही अधिक वर्णन किया है। उनके षडऋतु वर्णन वन-विहार, मद्पान, जलक्रीड़ा आदि सम्भोग श्रृंगार के उद्दीपन की दृष्टि से ही लिखे गये प्रतीत होते हैं। उनके श्रृंगारिक पदों की स्निग्धता अतिशय मनोहारिणी है।

मांमां प्रिय:प्रैक्षत कातराक्षीं सा सा ह्रिया नम्रमुखीवभूव।
नि:शंकमन्या: सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षै: ॥ ३/१६ ॥

जिस–जिस प्रिया को प्रिय श्री कृष्ण ने देखा उसने लज्जा से नीचा मुँख कर लिया। इस पर दूसरी युवतियाँ ईर्ष्या वश प्रियतम श्रीकृष्ण पर निर्भय होकर एक साथ कटाक्ष से प्रहार किया और भी देखिये—

चिररति परिखेदप्राप्तनिद्रासुखानांचिरमपिशयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धा:।
अपरिचलितगात्रा: कुर्वतेन प्रियाणामशिथिलभुजचक्राश्लेष भेदं तरुण्य: ॥ ११/१३

अर्थात् प्रात: काल हो रहा है। रात्रि रतिक्रीड़ा से थककर सोये हुए दम्पत्तियों में से नायिकाएँ पहले जाग गयी हैं परन्तु वे अपने शरीर को इसलिए नहीं हिलाती हैं कि उनके हाथ के हट जाने से प्रियतम की नींद न टूट जाये।

महाकवि माघ ने रसम्भिव्यक्ति के अनुकूल भावाभिव्यजंना भी की है। वीर–रस के स्थायिभाव उत्साह का बीज प्रथम सर्ग में दिखलाया गया है। प्रथम सर्ग में उनके आलम्बन विभाव शिशुपाल का वर्णन किया गया है पन्द्रहवें सर्ग में शिशुपाल में युधिष्ठिर, भीष्म, तथा कृष्ण के प्रति कठोर वचन उद्दीपन विभाव हैं और सप्तदश सर्ग में अनुभावों का वर्णन किया गया है। परन्तु श्रृंगार के संचारी भावों के चित्रण में इतने सफल नहीं हुए हैं।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि माघ वीर–रस तथा श्रृंगार रस दोनों के ही सफल चितेरे हैं, किन्तु उनका श्रृंगार अत्यन्त विलासमय हो गया है जो रसज्ञों के हृदय में खटकता है। वास्तव में कवि (माघ) प्रेम के कवि न होकर प्रेमकला के कवि हैं। वे मात्र नायिका के हाव–भाव या नखशिख वर्णन से ही भाव पक्ष की कमी को पूरा करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

## प्रकृति-चित्रण

माघ का प्रकृति चित्रण स्वाभविकता से परे कृत्रिमता से परिपूर्ण है। चतुर्थ सर्ग के प्रकृति-वर्णन में माघ दूर की कल्पना और यमक में फँस गये हैं, फिर भी षष्ठ सर्ग का प्रकृति-वर्णन सरल है। नवम सर्ग का सूर्यास्त वर्णन तथा एकादश सर्ग का प्रभात वर्णन भी अप्रस्तुत विधान से बहुत लदा-फदा प्रतीत होता है। माघ की प्रकृति प्राय: उद्दीपक पक्ष की प्रकृति है और वह सम्भोग श्रृंगार की प्रकृति! किन्तु बीच–बीच में वियोग के चित्र भी आ जाते हैं। माघ का प्रकृति वर्णन तीन प्रकार का दिखाई देता है (१) यमक

से परिपूर्ण (२) श्रृंगारी अप्रस्तुत विधान वाले प्रकृति-वर्णन (३) अन्य अप्रस्तुत विधान वाले प्रकृति वर्णन। प्रथम प्रकार का चतुर्थ सर्ग का प्रकृति-वर्णन अच्छा नहीं कहा जा सकता है, जबकि छठे सर्ग का प्रकृति-वर्णन सुन्दर है। छठे सर्ग में यमक श्लेष और श्रृंगारी अप्रस्तुत विधान के साथ वर्षा का वर्णन कितना सुन्दर है—

स्फुरदधीरताडिन्नयनां मुहुः प्रियमिवागालितोरू पयोधरा।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाज्जगतीधरम्॥ ६/२५॥

चमकती हुई चचंल बिजली वाली सघन बादलों से भरी मेघ पंक्ति अपने उचित समय पर ठीक उसी तरह उपस्थित हुई, जैसे चंचल नेत्रों वाली पुष्ट यौवन वाली नायिका अपने संकेतित समय पर प्रिय को प्रतीक्षा में नहीं डालते हुए उसके पास स्वयं उपस्थित होती है।

कवि ने प्रकृति पर मानवोचित चेष्टाओं का आरोप बहुत किया है। पश्चिम दिशा, अस्त होने वाले सूर्य को इस प्रकार घर से निकाल देती है, जिस प्रकार वैश्या निर्धन व्यक्ति को "निरकासयद्रविभपेतव सुं बियदालयादपरदिग्गणिका"। ८/१०॥ प्रातःकाल में चन्द्रमा पश्चिम दिशा से भागता हुआ इस प्रकार नजर आता है, जैसे पति के आने से प्रेमी पिछले दरवाजे से भाग निकला हो

"उपपतिरिव नीचैः पश्चिमान्तेनचन्द्रः (११/६५)

माघ के दूसरे प्रकार के अप्रस्तुत विधान के प्रकृति वर्णन एकादश सर्ग में अधिक सुन्दर बन पड़े हैं। प्रातःकालीन सूर्य का बालरूप में चित्रण कवि के सरस हृदय का परिचायक है।

उदयशिखरिश्रृंगप्राङ्गणेष्वेवरिङ्गन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोङ्केः हेलया बालसूर्यः॥११/४६॥

उदयचल के शिखर रूपी आगंन में रेंगता हुआ कमलनियों के द्वारा कमल रूपी मुख के हास्य के साथ देखा गया कोमल हस्ताग्र (अनुष्ण किरणाग्र बाल सूर्य पक्षियों के कलरव द्वारा बुलाती हुई। (मातृतुल्य) आकाश की गोदी में जा रहा है।

रैवतक से बहने वाली नदियों के वर्णन में कवि अपने स्नेही हृदय का परिचय देता है—

"अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपेतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पात्रिणां विरुतेन वत्सलतयेष निम्नगा।४/४७॥

पहाड़ी नदियाँ कलकल शब्द करती हुई बह रही हैं। ये निडर होकर उस रैवतक की गोद में लेटा करती हैं, अतः वे रैवतक की पुत्रियाँ हैं। आज वे अपने पति सागर

से मिलने जा रही हैं। इस कारण रैवतक चिड़ियों के करुण स्वर के माध्यम से जान पड़ता है कि वह प्रेम के कारण रो रहा है।

कहना न होगा, माघ के प्रकृति-वर्णन का खास सौन्दर्य अप्रस्तुत विधान पर ही आधारित है।

प्रथम सर्ग की संक्षिप्त कथा यह है कि आकाश मार्ग से देवर्षि नारद द्वारिका में श्रीकृष्ण के पास आते हैं। उनके पृथ्वी पर चरण धरने से पूर्व ही उठकर श्रीकृष्ण नारद का स्वागत कर उचित आसन पर बिठाकर अर्घ्यादि प्रदान करते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा आने का कारण पूछे जाने पर नारद शिशुपाल की उद्दण्डता का वर्णन कर इन्द्र का सन्देश सुनाते हैं। उसे स्वीकार कर लेने के बाद नारद आकाश मार्ग से पुनः लौट जाते हैं।

# वर्णक्रमानुसार प्रथम सर्ग के श्लोकों की क्रम-सूची

| | श्लोकाः | श्लोकाङ्काः |
|---|---|---|
| १. | अजस्रमास्फालित. | ९ |
| २. | अथ प्रयत्नोन्नमिता. | १३ |
| ३. | अथोपपत्तिछलना. | ६९ |
| ४. | अनन्यगुर्वास्तव. | ३५ |
| ५. | अभीक्ष्णमुष्णैरपि. | ६५ |
| ६. | अभूदयभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां. | ४२ |
| ७. | अमानवं जातमंज. | ६७ |
| ८. | अशक्नुवन् सोदुम्. | ५३ |
| ९. | अशेषतीर्थोपहृताः. | १८ |
| १०. | इतिब्रुवन्तं. | ३१ |
| ११. | उदातिसारं निगृहीत. | ३३ |
| १२. | उदीर्णरागप्रतिरोधकम्. | ३२ |
| १३. | उपप्लुतंपातुमदो. | ३८ |
| १४. | ओमित्युक्तवतोऽथ. | ७५ |
| १५. | करोति कंसादि. | ३९ |
| १६. | कलासमग्रेण. | ५९ |
| १७. | कृतःप्रजाक्षेम. | २८ |
| १८. | गतं तिरश्चीममूरु. | २ |
| १९. | गतस्पृहोऽप्यागम. | ३० |
| २०. | चयस्त्विषमित्यव. | ३ |
| २१. | जगत्यपर्याप्तसहस्र. | २७ |
| २२. | तदिन्द्रसन्दिष्ट. | ४१ |
| २३. | तदीयमातङ्ग. | ६४ |
| २४. | तदेनमुल्लिङ्गत. | ७३ |
| २५. | तपेनवर्षाशरदा. | ६६ |
| २६. | तमर्घ्यमर्घ्यादिकया. | १४ |
| २७. | तिरस्कृतस्तस्य. | ६२ |
| २८. | दधानमम्भोरुह. | ५ |
| २९. | दिशामधीशाश्च. | ४४ |
| ३०. | न वावदेतावुद. | १५ |
| ३१. | नवानधोऽधो. | ४ |
| ३२. | निजौजसाज्जस. | ३७ |
| ३३. | निदाघधामानं. | २४ |
| ३४. | निवर्त्यसोऽनुव्रजत. | ११ |
| ३५. | निवेशयामासिथ. | ३४ |
| ३६. | निशान्तनारी. | ६१ |
| ३७. | निसर्गचित्रोज्ज्वल. | ८ |
| ३८. | पतत्यतङ्गप्रतिम. | १२ |
| ३९. | परस्यमर्माविध. | ६३ |
| ४०. | परेतभर्तुर्महितो. | ५७ |
| ४१. | पिशङ्गमौञ्जीयुज. | ६ |
| ४२. | पुराणि दुर्गाणि. | ४५ |
| ४३. | पुरीमवस्कन्द. | ५१ |
| ४४. | प्रफुल्लतापिच्छ. | २२ |
| ४५. | प्रभुर्बुभूषुर्भुवन. | ४८ |
| ४६. | प्रवृत्त एव स्वयं. | ४० |
| ४७. | बलावलेपादधुना. | ७२ |
| ४८. | बृहच्छिलानिष्ठुर. | ५४ |
| ४९. | महामहानील. | १६ |
| ५०. | युगान्त कालप्रति. | २३ |
| ५१. | रणद्भिराघट्टनया. | १० |
| ५२. | रणेषुतस्य. | ५६ |
| ५३. | रथाङ्गपाणेः पट. | २१ |
| ५४. | लघूकरिष्यन्. | ३६ |
| ५५. | विदग्धलोकोचित. | ६० |
| ५६. | विधाय तस्या. | १७ |
| ५७. | विनोदमिच्छन्नथ. | ४८ |
| ५८. | विभिन्नशङ्खः | ५५ |
| ५९. | विलोकनेनैव. | २९ |
| ६०. | विहङ्ग राजाङ्गरूहै. | ७ |
| ६१. | श्रियः पतिः. | १ |
| ६२. | स काञ्चेन यत्र. | १९ |
| ६३. | सटाच्छटाभिन्न. | ४७ |
| ६४. | सतप्तकार्तस्वर. | २० |
| ६५. | स बाल आसीत्. | ७० |
| ६६. | समत्सरेणासुर. | ४३ |
| ६७. | समुत्क्षिपन्त्यः. | ५० |
| ६८. | सलीलयातानि. | ५२ |
| ६९. | स सञ्चरिष्णुर्भुव. | ४६ |
| ७०. | सितं सितिम्ना. | २५ |
| ७१. | स्पृशन्सशङ्कः | ५८ |
| ७२. | स्मरत्यदो दाशरथि. | ६८ |
| ७३. | स्वयं विधाता. | ७१ |
| ७४. | हरत्यघं सम्प्रति. | २६ |
| ७५. | हृदयमरिवधोदमात्. | ७४ |

## शिशुपालवध प्रथम सर्ग की सूक्तियाँ

| | | श्लोकाङ्क |
|---|---|---|
| १. | गुहानपैतुं प्रयणादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः। | १४ |
| २. | ग्रहीतुमार्यान् परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः। | १८ |
| ३. | अद्यौघविध्वंसविधौ पटीयसी. | १८ |
| ४. | स पुण्डरीकाक्ष इति सफुटोऽभवत् | २४ |
| ५. | शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् | २६ |
| ६. | श्रेयसि केन तृप्यते। | २९ |
| ७. | किमस्ति कार्य गुरु योगिनामपि। | ३१ |
| ८. | विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः। | ३३ |
| ९. | तव केवलः पुराणमूर्त्तेः महिमा केन अवगम्यते। | ३५ |
| १०. | ऋतेरवेः खेः क्षालयितुंक्षमेतकः क्षपातमस्काण्डमलीमसंनभः। | ३८ |
| ११. | स्वरूपशोभैकफलानि। | ४५ |
| १२. | निनाय विभ्यत् दिवसानि कौशिकः। | ५३ |
| १३. | सदाभिमानैकधना हि मानिनः। | ६७ |
| १४. | सतीव योषितप्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि। | ७२ |
| १५. | शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो निपातनीया हि सतामसाधवः। | ७३ |

### श्रीमाघप्रणीतम्

# शिशुपालवधम्

## प्रथम सर्गः

श्वेताङ्कं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरतरू विमलेरत्नासिंहासनस्थम्।
दौर्भिपाशाङ्कुशेष्टाभगधृति शिवदं चन्द्रमौलि त्रिनेत्रम्।
ध्यायेच्छ्न्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम्॥
शारदा शारदाम्भोज वदना वदनाबुजे
सर्वदा सर्वदाऽस्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात्।
नेताऽस्मिन् यदुनन्दन सभगवान्वीर प्रधानो रसः
श्रृंगारदिभिरङ्गवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना
इन्द्रप्रस्थगमाद्युपाय विषयश्चैकावसादः फलं
धन्यो माधककविर्वयंतु कृतिनस्तत्सूक्ति संवदेनात्॥

अथ तत्रभवान् महाकविर्माघः "काव्यं" यश सेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवतरक्षतये। सद्यः पर निवृतये कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे॥ इत्यालंकारिक वचन प्रामाण्यात् काव्यस्यानेक श्रेयः साधनत्वात् शिशुपालवधारव्यं महाकाव्यं चिकिर्षुः चिकिर्षिततस्यास्य ग्रन्थस्य निर्विहनसमाप्त्यर्थम् "आशीर्नमास्क्रिया वस्तु निर्देशों वाऽवि तन्मुखम्" इत्याशीराद्यन्यतामस्य प्रबन्धमुखलक्षणत्वात्

काव्यफलं शिशुपालवधबीजभूतं भगवतः श्री कृष्णस्य नारद दर्शनरूपं वस्तु आदौ श्रीशब्द प्रयोग पूर्वकं निर्दिशन् कथामुपक्षिपति—

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्ज्गन्निवासः वसुदेवसद्मनि।
बसन्ददर्शावतरन्तमम्ब राद्धिरण्यगर्भाङ्ग भुवं मुनिं हरिः ॥१॥

**अन्वयः**—जगत् शासितुं श्रीमति वसुदेवसद्मनिवसन् श्रियः पतिः जगन्निवासः हरिः अम्बरात् अवतरन्तं हिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिंददर्श ॥१॥

**संस्कृतभावार्थः**—जगन्नियन्ता लक्ष्मीपतिश्रीकृष्णः ऐश्वर्यसम्पन्ने स्वपितुः गृहे वसन् कदाचित् आकाशदागच्छन्तं नारदमुनिं ददर्श।

श्रिय इति॥ तत्रादौ श्री शब्द प्रयोगात् वर्णगणादि शुद्धे रम्भुच्ययः। तदुक्तकम् देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युः लिपितो गणतोऽपिवा" इति श्रियो लक्ष्म्याः पतिः अनेन रुक्मिणीरुपया श्रियासमेतं इतिसूचितम्।

**व्याख्या**—जगत् लोकं शासितुं नियन्तुम् दुष्टाग्रहाशिष्टानुग्रहाम्यां नियन्तुं श्रीमति सर्व समृद्धियुक्ते शोभासम्पन्ने, वसुदेवसद्मनि वसुदेवगृहें कश्यपऽवतारस्य वसुदेव नामकस्य स्वपितुः भवने इति भावः। वसन्= तिष्ठन् श्रियः=लक्ष्म्याः रुक्मणी रुपया इति पतिः भर्त्ता। पतिर्भर्ताः इत्यमरः। "राघवत्वे भवेत्सीता रुक्मिणी कृष्ण जन्मनि" इति विष्णुपुराणात्। जगन्निवासः= जगतामाधारः हरिः= श्री कृष्णः अम्वरात्= आकाशात् अवतरन्तम्= आयान्तम् इन्द्र सन्देशकथनार्थमितिभावः। हिरण्यगर्भाङ्ग भुवं= ब्राह्मणः मानसपुत्रं मुनिं= नारदमुनिम्, ददर्श= अवलोकयामास। कदाचिदितिशेषः॥ अत्र संसृष्टिः अलङ्कारः। अस्मिन् सर्गे सर्वत्र वंशस्थ छन्दम्। "जतौतु वंशस्थमुदीरितं जरौ" इतिलक्षणात्।

**हिन्दी अनुवाद**—(महाकवि श्रीमाघ श्री शब्द का प्रयोग पूर्वक श्री कृष्ण के नारद दर्शन रूप वस्तु का निर्देश करते हुए कथा का आरम्भ करते हैं। संसार को अपने नियन्त्रण में रखने के लिए सम्पूर्ण समृद्धि से परिपूर्ण अपने पिता वसुदेव के भवन में रहते हुए लक्ष्मी के स्वामी समस्त लोकों के निवास स्थान भगवान श्री कृष्ण ने आकाश से उतरते हुए ब्रह्मा के मानस पुत्र नारद मुनि को देखा।

**कोशः**—त्रिस्वथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्" इत्मरः।

"सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्चः, कमला श्रीहरिप्रिया" इति चामरः।

"धनः प्रियः पतिर्भर्त्ता" इत्ममरः। गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनं, इत्यभरः। "व्योम पुष्करमम्वरम्" इत्यभरः।

**व्याकरणम्**—गच्छति परिवर्त्तते इति जगत्। वसुदेवसद्मनि वसुषु दीव्यति इति वसुदेवः वसुदेवस्य सद्मं इति वसुदेव सद्म तास्मिन् वसुदेव सद्मनि बसन् = बस् धातु शतृ प्रत्यय = बसन्। जगान्निवासः—निवसन्ति जनाः अस्मिन् असौ निवासः—जगत् निवसति यास्मिन् सः जगन्निवासः हरिः—हरति पातकजातं स्मरणमात्रेण इति हरिः। हन् हरणे धातु से उणदि सूत्र से इ प्रत्यय होने पर हरिः सिद्ध होता है। अम्वरात् —अम्बः शब्दः तं राति इति अम्बरम् तस्मात् अम्बरात्। अवतरन्तम् अव पूर्वक तृ धातु से शतृ प्रत्यय "अवतरत्" पुल्लिङ्ग द्वितीया एक वचन में अवतरन्तम्" होता है। हिरण्यगर्भाङ्गभुवम् हिरण्यस्य गर्भ हिरण्यगर्भः अंगात् भवति इति अंगभूः हिरण्यस्य अंगभूः तम् हिरण्य गर्भाङ्गभुवाम्। हिरण्यं हिरणमयमण्डं तस्य गर्भ इव इत्यपि शुद्धम्। मुनिम् मन्यते इति मुनिस्तम् मुनिम्। ज्ञानर्थक मन धातु से उणादि सूत्र "मनेकच्च" से इन् प्रत्यय होकर मुनि बनता है।

**विशेष**—शिशुपालवधम्—शिशुपालस्य वधः शिशुपालवधः स वर्णनीयो यस्मिन् काव्येतत् शिशुपालवधम् व्यधिकरणबहुब्रीहिः शिशुपाल के वध का वर्णन है जिसमें वह काव्य। पुराणों के अनुसार रुक्मिणी लक्ष्मी का अवतार रूपा मानी जाती है तथा वसुदेव कश्यपावतार और श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार माने जाते हैं।

**जगन्निवास**—प्रलय काल में सम्पूर्ण चराचर जगत् उस पर ब्रह्म परमात्मा में लीन हो जाता है। जैसे गीता में कहा है—

"सर्वभूतानि कौन्तेय। प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥ ९/७॥
तथा सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् यजुर्वेद अ० २५ म १०

**हिरण्यगर्भाङ्गभुवम्**—ब्रह्मा के अङ्ग से उत्पन्न होने वाला अर्थात् ब्रह्मा का पुत्र नारद। मनुस्मृति में बताया गया है कि ईश्वर ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न किया, तब उसमें सृष्टि का बीज डाला। वह बीज स्वर्णमय अण्डरूप हो गया और उसी अण्डे से सम्पूर्ण लोकों को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। देखिये—

"सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजा।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
तदण्डमवद्धैमं सहस्राऽशु समप्रभम्।
तस्मिजज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामह॥

इसीलिए ब्रह्मा का नाम हिरण्यगर्भ है (मनु. १/८-९ "भागवत के अनुसार ब्रह्मा के शरीर से दश प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई। उनमें एक नारद भी हैं जो ब्रह्मा की गोद से उत्पन्न हुए। भागवत के अनुसार—

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे।
भगवच्छक्तिमुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः॥
मरीचिरत्र्याङ्गिरसो पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वशिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः॥
उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे... (भागवते स्क. ३ अ.१२ श्लोक २१-२४

तदा जनैर्विस्मयेनेक्षितुं प्रवृत्तमित्याह

गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः॥२॥

**अन्वयः**—अनूरुसारथेः गतं तिरश्चीनम् हविर्भुजः उर्ध्वज्वलनं प्रसिद्धम्, सर्वतः विसारिधाम अधः पतति एतत् किम्" इति जनैः आकुलम् ईक्षितम्।

**संस्कृतभावार्थः**—सूर्यस्य गतिः तिर्यक् अग्नेः ऊर्ध्वज्वलनं प्रसिद्धम्, सर्वतः प्रसारीतेजः आकाशात् भूमितलम् आगच्छति, एतत् किम् इति जनैः अवलोकितम्।

**व्याख्या**—अविथमानौ उरू यस्यासौ अनूरूः अनूरूः सारथिः यस्म स अनूरूसारथि तस्य अनूरूसारथेः सूर्यस्य गतं गमनं गति वा, तिरश्चीनम्—तिर्यक् पूर्वान्तात् पश्चिमान्तादित्यर्थः। हविर्भुज—हूयते इति हविः हविर्भुङ्क्ते इति हविर्भुक् तस्य हविर्भुजः अनलस्य उर्ध्व ज्वलनं—उर्ध्व च तज्जवलनं उर्ध्वज्वलनं उर्ध्वस्फुरणम्। प्रसिद्धं—विख्यातम् । सर्वतः—समन्ततः। विसारि—प्रसरणणीलम्। धाम-तेजः। अधः-नीचैः अधस्तात् इत्यर्थ। पतति= आगच्छति। एतत्-दृश्यमानं धाम। किम्-किमात्मकं। इति-एवम्। जनैः द्वारिकावासिभिः सामन्य लौकैः आकुलं-विस्मयेन, चकितचित्तेन वा। ईक्षितम् आलोकितम् दृष्टम् वा।

**कोशः**—"सूरसूतोऽरुणोऽनूरुः काश्यपिर्गरुडाग्रजः इत्यमरः।

धाम रश्मौ गृहे देहे स्थाने जन्मप्रभावयोः इति हेमः।

समन्ततस्तु परितः सर्वतो विश्वगित्यापि। इत्यमरः।

"नियन्ता प्राजिता यन्ता सूतः क्षत्ता च सारथिः" इत्यमरः।

तिर्यगार्थे साचि तिरोऽपि" इत्मरः,

**व्याकरणम्**—गतम्-गम्+भावेक्तः अनुनासिक लोपः, तिरश्चीनम् तिरसपूर्वक अञ्च धातु से विभाषाश्चेरेदिक् स्त्रियाम् इति स्वार्थे ख ईनादेशः। प्रसिद्धम्-सिद्ध्यर्थक षिध् धातु से कर्त्तरि वा कर्मणि से क्तः प्रत्यय लगकर प्रसिद्धम्। विंसारि-विपूर्वक सृ धातु से भाव में णिनीः।

ईक्षितम्—इक्ष, धातु से भाव में क्तः प्रत्यय होकर ईक्षितम्॥

**हिन्दी**—सूर्य की गति तिरछी है और अग्नि का ऊपर की ओर जलना प्रसिद्ध है परन्तु यह सब ओर फैलने वाला तेज नीचे की ओर आ रहा है। वह क्या है ? इस प्रकार द्वारिका के लोगों ने व्याकुलतापूर्वक उसको देखा।

**अलङ्कार**—व्यतिरेक "उपमानाद्यददन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः"।

यहाँ उपमेय मुनि का तेज उपमान सूर्य और अग्नि के तेज से चारों ओर फैलने वाले धर्म के कारण अधिक वर्णन किया गया है, इसलिए यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

**छन्दः—वंशस्थः**

**विशेष**—कश्यप की विनता नाम की स्त्री से जो एक पक्षिणी थी दो अण्डे उत्पन्न हुए। उनमें से एक अण्डे को समय से पूर्व (आधा पका होने पर ही) फोड़ डाला। इस अण्डे से जो बच्चा उत्पन्न हुआ, उसके ऊपरी अवयव तो पूर्णतया बन गये थे किन्तु अधो भाग का निर्माण नहीं हुआ था। इसलिए उसका नाम अनूरु पड़ा, पूर्ण ताप न मिलने के कारण उसे सूर्य के ताप की आवश्यकता थी, इसलिए कश्यप के आदेश से इस बच्चे को सूर्य का सारथि बना दिया गया। इसी का नाम अरुण है। दूसरे अण्डे से जो पूर्ण पक जाने पर फोड़ा गया गरुड़ की उत्पत्ति हुई।

अथ भगवान कृष्णः क्रमेण तं ज्ञातवाऽनित्याह

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा ततः शरीरीति विभविताकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानितिक्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः ॥३ ॥

**अन्वयः**—विभुः सः पुरात्विषा चयः इत्यवधारिम्। ततः विभविताकृतिम् शरीरीति (अवधारितम्) (तत्) विभक्तावयवं पुमानिति (अवधारितं) अमुं क्रमात् नारदः इत्यबोधि।

**संस्कृतभावार्थः**—प्रथमदृष्टया श्रीकृष्णः तेजपुञ्जम् अवधारितम्, ततः समीपत्वात् शरीरधारिणम्, तथा अति समीत्वात् पुमान् इति क्रमात् नारदम् ज्ञातवान्।

**व्याख्या**—विभु = वस्तुतत्व निर्धारण समर्थः "विभुःप्रभो व्यापके" इत्यने कार्थ संग्रहः। सः = हरिः श्रीकृष्णः। पुरा = प्रथमम् आदौ इत्मर्थः। त्विषाम् = तेजसाम्। चय = समूहः, पुञ्जः। इति = एवम्। अवधारितम् = विनिश्चितम्। ततः = तदनन्तरम्, किंचित्सामीप्ये सति। विभाविताकृत्रिम = विभाविता विनिश्चिता आकृतिः यस्य सः विभविताकृतिस्तम् विभाविताकृतिम् = लक्षितमूर्त्तिम्।शरीरी देही। विभक्तावयवम् = विभक्ता अवयवाः यस्यसस्तम् विभक्तावयवम् = स्पष्ट विज्ञात हस्तपादादि अंगम्। पुमान् = पुरुषः इति = एवम्। अमुम् = अम्बरादयान्तं व्यक्ति विशेषम्।

क्रमात् = सामान्यविशेषज्ञानक्रमेण क्रमशः इत्यर्थः। नारद = अयं नारदः इति = इत्यम्। अवोधि = ज्ञातवान्। नारदोऽयमति निश्चितवान् ॥

**कोशः**—"विभुः प्रभो व्यापके"। त्विबाम् = "कान्तौ वाचि रुचौ त्विट्" "त्विट् शोभापि" इत्ममरः। पुरा "स्यात्प्रबन्धे पुराती ते निकटागाभिके पुरा" इत्यमरः। समुदायः समुदयः समवायश्चयोगणः" इत्यमरः॥ प्राणी तु चेतनो जन्मी जन्तु जन्यु शीरिरणः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—वि पूर्वक भू धातुसे डु प्रत्यय जोड़कर विभुः। पुरा-पुर अग्रगभने धातु से बहुलकात् का प्रत्यय पुरा। त्विषाम्- दीप्त्यर्थक त्विष् धातु क्विप् प्रत्यय होकर त्विट् षष्ठी बहुवचन से त्विषाम्। चयः—चयनार्थक चिप् धातु से अच् प्रत्यय चयः। अवधारितम् अव पूर्वक धृधातु से कर्म में क्त प्रत्यय। आकृतिम्-आ पूर्वक कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय आकृतिः। शरीरी-शरीर + मत्वर्थे इनि। अबोधि-बुध + कर्त्तारि लुङ् + त "दीपजनवुध-इत्यादिनाचिण्" चिणेलुक्" इति तस्य लुकि।

**हिन्दी**—वस्तु का निर्धारण करने में समर्थ भगवान् श्रीकृष्ण ने आकाश से आते हुए को तेज पुन्ज समझा। इसके बाद थोड़ा नीचे आने पर आकृति देखकर कोई प्राणी समझा। इसके बाद अंगों की स्पष्ट झलक से कोई पुरुष समझा। इस प्रकार क्रमशः अन्त में "ये नारद हैं" ऐसा जाना।

**अलङ्कार**—काव्यलिङ्ग।"हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्" इस श्लोक में "विभाविताकृति" तथा विभक्तावयवम् ये दोनों पद क्रमशः आकृति और अवयव पदार्थों

का विशेषण रूप होकर शरीरी और पुरुष का बोध कराने में हेतु हैं इसलिए यहाँ पर काव्यलिङ्ग अलंङ्कार है।

**छन्द:**—**वंशस्थ**

**विशेष**—यहाँ से "क्रमण्दमुं नारद इत्यवोधि सः" इस वाक्यांश का सम्बन्ध अगले सात श्लोकों में भी रहेगा। अतः "अबोधि" इस एक क्रिया का आठ श्लोकों में अन्वित होने से यहाँ आठ श्लोकों का कुलक है। पाँचवाँ अधिक श्लोकों में एक ही क्रिया के अन्वित होने पर कुलक होता है। साहित्य दर्पण में कहा है—

"छन्दोवद्धपद्यं पधं तेन मुक्तेन मुक्तकम्।
द्वाभ्यां तु युग्मकं सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते।
कलायकं चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकं मतम्।

"अमुं नारद इत्यबोधि" इस वाक्य में नारद कर्म कारक में है। अतः द्वितीया विभक्ति होनी चाहिए किन्तु निपात शब्द से अभिहित होने के कारण कर्म होने पर भी द्वितीया नहीं हुई। वामन ने कहा है "निपातेनाभिहिते कर्मणिन कर्मविभक्तिः।

अथायान्तं नारदं सप्तभिः श्लोकैर्वर्णयन् तस्य शिवोपम्यं दर्शयति
नजवानधोऽधो वृहतःपयोधरान्समूढ़कर्पूर परागपाण्डुरम्।
क्षणंऽक्षणोत्क्षिप्त गजेन्द्रकृत्तिना सफूटो पमंभूतिसितने शम्भुना ॥४॥

**अन्वयः**—नवान् वृहतः पयोधरान् अधोऽधः (स्थितम्) समूढकर्पूर परागपाण्डुरम् क्षणं क्षणोत्थिप्तं गजेन्द्र कृतिन भूतिसितेन शम्भुना स्फुटोपमम् (अमुं नारद इत्यबोधि इति पूर्वेणान्वयः)

**संस्कृतभावार्थः**—अथायान्तं नारदं सप्तभिः श्लोकैवर्णयन्, शिवोपम्यं दर्शयति—मेधान् जलपूर्णान् नीलान् अधः अत्यन्तधवलम् मेधसमीपत्वात् ताण्डवेऽउपधारित गजेन्द्रचर्मणा भस्मावलेपशिवेन सदृशम् नारदं ददर्श इति।

**व्याख्या**—नवान् = नूतनान् जलपूर्णान्त् अतएव अतिश्यामान् वृहतः विशलाकृतीन्। पयोधरान् = धरन्तिति धराः पयसां धराः पयोधराः तान् पयोधरान् = मेघान्। अधोऽधः = मेंघानां समीपे अधः प्रदेशे स्थितामिति शेषः। समूढकर्पूर परागपाण्डुरम् = कर्पूरस्य परागः कर्पूरपरागः समूढश्चासौ कर्पूर परागः (क.धा.) पुञ्जीभूतकर्पूरचूर्णतुल्यं शुभ्रम्। क्षणं = क्षणमात्रम् मेघसमीपावस्थान क्षणे इत्यर्थः। क्षणोत्क्षिप्त गजेन्द्र कृत्तिना = गजानां इन्द्रः गजेन्द्र (त.पु.) गजेन्द्रस्यकृतिः (त.पु.) क्षणेषु उत्क्षिप्ता गजेन्द्र कृति येन सः क्षणोत्क्षिप्त गजेन्द्र कृन्तिस्तेन क्षणोत्क्षिप्त गजेन्द्र कृन्तिना (ब.व्री.) ताण्डवोत्सवे उपरिधारित गजेन्द्रचर्मणा। भूतिसितेन = भूत्या सितः भूतिसितस्तेन भूतिसितेन-भस्मना धवलेन। शम्भुना = भगवता शिवेन। स्फुटोपमम् = स्फुटा उपमा यस्य सः सफुटोपमस्तम् स्फुटोपमम् = स्पष्ट सादृश्यम्। (अमुं नारद इत्यबोधि इति पूर्वेणान्वयः)

**कोशः**—प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः इत्यमरः

"विशङ्कटं पृथु बृहत्" इत्यमरः। पयोधरः कोशकारे नारिकेले स्तनेऽपिच" इति मेदिनी। पयोधरः कुचे मेघे" इतिविश्वः। "समूढः पुञ्जिते भुग्ने" इतिविश्वाःकर्पूरः घनसारश्चन्द्रसंज्ञ सिताभ्रो हिमबालुकः" इत्यमरः। क्षणम् "निर्व्यापार स्थितौ काल विशेषोत्सवोः क्षणः" इत्यमरः। "अजिनं चर्म कृतिः स्त्री" इत्यमरः। "भूतिर्भस्मानि। संपत्ति हस्ति श्रृंगारयोः स्त्रियाम् " इतिमेदिनी

**व्याकरणम्**—पयोधरात् इत्यत्र "उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु" इति वार्तिकेन अधोऽधः शब्द प्रयोगो द्वितीया। क्षणमित्यत्र अत्यन्त संयोगे द्वितीया।

**हिन्दी**—(यहाँ) से लेकर सात श्लोकों में नारद जी का वर्णन है) नूतन अतएव जल से परिपूर्ण होने से कृष्ण वर्ण वाले बड़े-बड़े बादलों के नीचे स्थित ढेर सारे कर्पूरचूर्ण के समान सफेद, ताण्डव नृत्य के समय गजचर्म को ऊपर उठाये हुए, भस्म लगाने से श्वेत वर्ण वाले शिवजी के समान दिखाई देने वाले (नारद को जाना)

**विशेष**—कहा जाता है कि गज नामक एक असुर ने सब देवता और मनुष्यों को पीड़ित करना प्रारम्भ कर दिया। उसमें यह विशेषता थी कि वह मारने पर भी अपने चर्म से भूमि का स्पर्श पाकर जीवित हो जाता था। इससे दुःखी होकर सभी ने भगवान शिव की शरण ली। भगवान शिव ने असुर का संहार करके उसके चर्म को भूमि के स्पर्श से बचाने के लिए अपने ऊपर धारण कर लिया अतएव वह पुनर्जीवित न होकर किसी को दुःखी नहीं कर सका। तभी से शिवजी का नाम कृतिवासा पड़ा।

नारदस्य हिमालयसादृश्यमाह

दधानमम्भोरुह केसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं प्रततीततीरिव ॥५ ॥

**अन्वयः**—अम्भोरुह केसरद्युतीः जटाः दधानं शरच्चन्द्र मरीचिरोचिपम् विवाकपिङ्गाः तुहिनस्थलीरुहः व्रततीततीः दधानं धराधरेन्द्रमिव (अमुं नारद इत्यबोधि)

**संस्कृतभावार्थः**—कमलकेसरद्युतिजटाधारयन्तं, शरच्चन्द्र किरणतुल्यम्गौरवर्णम्, परिपक्व हिमप्रदेश समुत्पन्नालतासमूहान् धारयन्तं हिमालयं इव नारदं ददर्श।

**व्याख्या**—अम्भासि रोहन्तीति अम्भोरुहाणि अम्भोरुहाणां केसराणि अम्भोरुहकेसराणां द्युतिः हव द्युतिः यासां ताः अम्भोरुह केसरद्युतीः =कमल केसर सदृशपीतवर्णाः। जटाः = कचकलापः सटा इत्यर्थः दधानम् = धारयन्तम्। शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्=शरच्चन्द्रस्य मरीचय् इव रोचिर्यस्य सः तं शरच्चन्द्र चिरोचिषम्= शरदिमरीन्दुकान्तिधवलम् श्वेतवर्णम् इत्यर्थः। विपाकपिङ्गाः= विशिष्टः पाकःविपाकः तेन पिङ्गाः विपाकपिङ्गा := परिपाकेन पीत वर्णाः तुहिनस्थलीरुहः= तुहिनस्य तुहिन प्रधाना वा स्थली तुहिनस्थली तस्यां रोहन्तीति तुहिनस्थलीरुहः ताः तुहिनस्थलीरुहः= तुषारभूमि समुत्पन्नाः। व्रततीततीः= व्रतनीनां

ततयः ताः व्रततीततीः = लतासमूहान्। दधानं = धारयन्तम्। धराधरेन्द्रम् = धरन्तीति धराः, धरायाः धराः धराधराः तेषामिन्द्रस्तं धराधरेन्द्रम् = पर्वतराज हिमालयम्। इव = सादृश्यम्।

**कोशः**—"किञ्जल्कः केसरो स्त्रियाम् "इत्यमरः। जटा लग्नकचे मूले" इति मेदिनी। "शोभकान्तिर्थुतिश्छविः" इत्यमरः। "वल्ली तु व्रततिर्लता इत्यमरः। "अवश्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिमम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—दधानम् = धा धातु से शानच् प्रत्यय धा + आनं द्वित्व धधा + आन जश्त्य दधा + आन द्वितीयायां एक वचने दधानम्॥ तुहिनं = तुहिर धातु उणादि सूत्र से ईनन् प्रत्यय तथा ह्रस्व होकर तुहिनम्।

**हिन्दी**—कमल के केसर के समान कान्ति वाली (पीत वर्ण वाली) जटाओं को धारण किये हुए, शरत्कालीन चन्द्रमा की किरणों के समान धवल कान्ति वाले (हिमालय के पक्ष में) बर्फीली भूमि मे उगने वाली परिपक्व (पीत वर्ण वाली) लताओं के समूह को धारण करने वाले श्वेत हिमालय के समान प्रतीत होने वाले उस पुरुष विशेष को यह नारद हैं ऐसा जाना।

**अलङ्कारः—उपमा**

**विशेष**—कुछ आलोचकों के अनुसार बर्फीली भूमि में लताओं की उत्पत्ति न होने से यह उपमान असंगत है, किन्तु अन्य विष-कीट न्याय से उसका समाधान इस प्रकार करते हैं जिस प्रकार विष कीट विष को खाता हुआ ही बढ़ता है मरता नहीं, उसी प्रकार बर्फीली भूमि में लताओं का उत्पन्न होना और पकना कहा है।

नारदस्यं बलभद्रोपम्यं आह

विशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति।
सुवर्णसूत्राकालिताधराम्बरां विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम्॥६॥

**अन्वयः**—पिशङ्गमौञ्जीयुजम् अर्जुनच्छविम्, आजनद्युति एणाजिनं वसानं (अतएव) सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां शितिवाससस्तनुं बिडम्बयन्तम् (अमुं नारद इत्यबोधि)

**संस्कृतभावार्थः**—पीतवर्णमेखलायुतम्, श्वेतवर्णम् (गौरवर्णम्) कृष्णचर्मधारयन्तम् स्वर्णमेखलायुतम्, पीताम्बर धारयन्तम् बलराममपि विड़म्बयन्तम् नारदं ददर्श।

**व्याख्या**—पिशङ्गमौञ्जीयुजम् = मुञ्जस्य विकारः मौञ्जी पिशङ्ग चासौमौञ्जी पिशङ्गमौञ्जी तयायुज्यते इति पिशङ्गमौञ्जीयुक् तं पिशङ्गमौञ्जीयुजम् = पीतवर्णमयीमुञ्ज मेखला धारिणम्। अर्जुनच्छविम् = अर्जुना छविः यस्म सः अर्जुनच्छविस्तम् अर्जुनच्छविम् (ब०ब्री०) = गौरवर्णम्। अंजनधुति = अजनस्य द्युतिः इव द्युतिः यस्य तत् अञ्जनधुति = कज्जलच्छविं कृष्णवर्ण मित्यर्थः। एणाजिनं = एति शीघ्रतया गच्छतिति एणम् तस्य अजिनं एणाजिनम् = कृष्ण मृग चर्म। वसानं = धारयन्तम। सुवर्ण सूत्राकलिताधराम्बराम = सवर्ण सूत्रेण आकलितम् अधराम्बरं

यस्याः सा ताम् सुवर्णसूत्राकालिताधरम्बराम् = स्वर्णमेखलाबद्धाधोवसनाम्। शितिवाससः = शिति वासः यस्य सः शिति वासा तस्य शितिवाससः = नीलाम्बरस्य बल रामस्य। तनुम्-शरीरम्। बिडम्बयन्तम् = अनुकुर्वाणम्॥

**कोशः**—"कडारः कपिलः पिङ्ग पिशङ्गों कद्रुपिङ्गलो" इत्यमरः।

"अवदातःसितोगौरो वलक्षों धवलोंऽर्जुनः" इत्यमरः।

"अन्जनं कज्जले चाक्तौ सौवीरे च रसाज्जने"। शिती धवल गोकर्णपृषतैणश्वर्यशेहिताश्चमरी मृगाः"। इत्यमरः। "शिती धवल मेचकौ" इत्यमरः। "गात्रं वपुः सहननं शरीरं वष्मं विग्रहः। कामो देहः क्लीव पुसो स्त्रियां मूर्त्ति स्तनुस्तनूः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—पिशङ्गमौञ्जीयुजम्-पिशङ्गमौञ्जी + युज् + क्विप् + अम्। वसानम्-वस + शानच्। बिडम्बयन्तम्-बिडम्ब + णि + शतृ + अम्

**हिन्दी**—पीली मूंज की मेखला धारण किये हुए (स्वयं) गौर वर्ण वाले और कृष्ण मृगाचर्म धारण किये हुए इसीलिए सोने की करधनी से नीले अधोवस्त्र को बाँधे हुए गौर वर्ण वाले श्रीबलराम के शरीर का अनुकरण करने वाले उस पुरुष को "ये नारद हैं" ऐसा जाना।

**अलङ्कार-आर्थी उपमा**

**विशेष**—मनुस्मृति मे कहा है कि ब्राह्मण की मेखला भूंज की क्षत्रिय की मूर्वा घास की धनुष की डोरी के समान और वैश्य की सनके तन्तुओं की समान तीन लड़ियों वाली चिकनी होनी चाहिए। देखिये—

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रियस्यतु मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी" ॥२/४२॥

अथ नारदस्य शरत्मेघसादृश्यमाह

विहङ्गराजाङ्गरुहै रिवापतैर्हिरणमयोर्वीरुहवाल्लितन्तुभिः।
कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तड़िता गणैरिव ॥७॥

**अन्वयः**—विहङ्गराजाङ्गरुहैः इव आयतैः हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः कृतोपवीतम् हिमशुत्रम् (अतएव) घनान्ते तडिताम् गणैः उच्चकैः घनमिव (अभुंनारद इत्यबोधि)

**संस्कृतभावार्थः**—पक्षीराजकेशसदृशैः स्वर्णमयलतातन्तुभिः निर्मित यज्ञोपवीतं धारयन्तं,शरत्काले चपलामध्यं श्वेतमेघसदृशं नारदम् ददर्श।

**व्याख्या**—विहङ्गराजारुहहैः—विहायसा गच्छन्तीति विहंगाः विहंगानां राजा इति विहंगराजः तस्य अङ्गे रुहन्तीति विहंगराजङ्गरुहास्तैः वहङ्गराजङ्गरुहैः = गरुड़लोमभि / इव = यथा/ आयतैः = दीर्घैः। हिरणभमोर्वी रुहवल्लितन्तुभिः = हिरण्यस्य विकारः हिरण्मयी, हिरण्मयी चासौ उर्वी हिरण्ममोर्वी, तस्यां रोहन्तीति हिरण्मूयोर्वीरुहः ताश्च ताः वल्लयः हिरण्ययोर्वीरुहवल्लयः तासाम् तन्तवः हिरणमयोर्वीरुहवाल्लितूतवस्तैः

हिरण्मयोर्वीरुह वल्लितन्तुभिः= स्वर्णमय भूमिसमुत्पन्नलता सूत्रैः। कृतोपवीतम् = कृतम् उववीतं येन सः तं कृतोपवीतम् = धृतयज्ञोपवीतम्, विरचितयज्ञ सूत्रसूत्रम् इत्यर्थः। हिमशुभ्रम् = हिमवत् शुभ्रम हिमशुभ्रम् तुषार धवलम्। (अतएव) धनान्ते = घनानां अन्तः घनान्तस्तस्मिन् घनान्ते = शरदि ऋतौ इत्यर्थः। तडिताम् = ताड़यति इति तड़ित् तासां तड़िताम् = सौदामिनीनाम् विद्युतातित्यर्थः। गणैः = समूहैः। उच्चकैः = उच्चिनोति इति उच्चैः = उन्नतम्। धनम् = मेघम्। इव् = यथा। शोभमानभमुं नारद इत्यबोधि इति पूर्वेणान्वयः॥

**कोशः**—"खगे विहंग विहग विहङ्गम विहायसः। इत्यमरः।

"सर्वसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा" इत्यमरः। "वल्ली तु व्रततिर्लता" इत्यमरः। उपवीतं यज्ञसूत्रं प्रोद्धते दक्षिणे करे" इत्यमरः। तुषारस्तुहिनं हिमम्" इत्यमरः। "शुभ्रं दीप्तेऽभ्रकेसिते" इतिहेमः। तडित् सौदामिनी विद्युत"इत्यमरः। "समुदायः समुदयः समवायः चयोगणः"इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—आयतैः= आ + यम् + क्तः। उच्चकैः = "उच्चैरित्यव्ययात् अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राकटे" इति स्वार्थे अकच्। गणैः = इत्थंभूत लक्षणे तृतीया। हिरण्यस्य विकारः हिरण्मयी इत्यत्र दण्डिनायन इत्यादिना मयटि यलोनिपातः।

**हिन्दी**—पक्षिराज गरुड़ के बालों के समान स्वर्णभूमि में उत्पन्न लताओं के लम्बे-लम्बे तन्तुओं से बनी यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण किये हुए, बर्फ के समान अत्यन्त श्वेत वर्ण, (अतएव) शरद् ऋतु में, विद्युत से युक्त शुभ्रवर्ण वाले ऊंचाई पर स्थित मेघ के समान शोभित नारद को जाना।

**अलङ्कार**—यहाँ उपमा अलंकार है। इसमें शरत् के श्वेत मेघों से नारद की उपमा दी गई है।

**छन्दः**—वंशस्थः

अथ नारदस्य ऐरावतसाम्यमुत्प्रेक्षते =

निसर्ग-चित्रो ज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लसद्बिसच्छेद सिताङ्गसङ्गिना।
चकासतं चारुचमूरुचर्मणा कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम् ॥८॥

**अन्वयः**—निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा, लसद्बिसच्छेदंसिताङ्गसङ्गिना, चारुचमूरुचर्मणा, कुथेन इन्द्रवाहनं नागेन्द्रं इव चकासतम्

**संस्कृतभावार्थः**—स्वभाविकविविधवर्णलोम्ना, मृणालखण्डवत् देहसंसर्गेण, सुन्दर मृगचर्मणा पृष्टास्तरणेन आच्छादितं ऐरावतगजं इव शोभितं नारदं ददर्श।

**व्याख्या**—निसर्गचित्रोज्ज्वल सूक्ष्मपक्ष्मणा = निसगति् चित्राणि उज्ज्वलानिः सूक्ष्माणि पक्ष्माणि यस्यं तेन निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा = स्वभाविक विविधवर्णभास्वराणुलोम्ना। लसद्बिसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना = लसत् चासौ विसच्छेदः लसद्बिसच्छेदः इव सितम् लसद्बिसच्छेदसितम् तच्च तदङ्गञ्च लसद्बिसच्छेदसिताङ्गम्

तस्मिन संगोऽस्यास्तीति तेन लसद्बिसच्छेसिताङ्गसंगिना= शोभित मृणालखण्डवत् गौरवर्णाङ्गसंसक्तेन। चारु चमूरु चर्मणा= चमूः चम्वांवाऊरुः यस्यस चमूरुः चमूरोः चर्म चमरुचर्म चारु चतत् चमूरुचर्म चारु चमूरुचर्म तेन चारुचमूरु चर्मणा= सुन्दरमृग चर्मणा। कुथेन= कुटनाति इति कुथस्तेन कुथेन=( गजपृष्टा स्तरणेन। इन्द्र वाहनम्= इन्द्रस्य वाहनम् इन्द्रवाहनं तद् इन्द्रवाहनम्= ऐरावतमित्यर्थः। नागेन्द्रं इव= नागानां इन्द्रः नागेन्द्रः तम् नागेन्द्रम्= गजराजम् ऐरावतमित्यर्थः चकासतम्= शोभितम्। (अमुं नारद इत्यबोधि इतिपूर्णेणान्वयः)

**कोशः**—"स्वरूपंच स्वभावश्च निसर्गश्च" इत्यमरः। "चित्रं किर्मीरकल्माष शवलैताश्च कतुरि" इत्यमरः।

"मृणालं विसम्" इत्यमरः। "सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्। कान्तं मनोरमं रुच्यं मनोज्ञं मञ्जु मञ्जुलम्" इत्यमरः। "छेदः खण्डोऽस्त्रियाम्" इति त्रिकाण्डशेषः। "चर्म कृत्तौ च फलके" इति मेदिनी। "प्रवेण्यास्तरणं वर्णः परिस्तमोमः कुथो द्वयोः" इत्यमरः। इन्द्रो मरुत्वान्मघवान् विडौजा पाकशासनः" इत्यमरः। "मतङ्गजे सर्पे पुंनागे नागकेसरे" इतिहेमः। "मतङ्गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—कुथेन—कुन्थ दीप्तौ धातु से "नन्दि ग्रहिपचादिभ्योः" से अच् प्रत्यय, न कालोप होकर कुथः सिद्ध होता है (यह हाथी का झूल होता है) चकासतम्-चकास् धातु से कर्त्ता में शतृ प्रत्यय जोड़कर- चकासत्" जक्षित्यादयषट्" से अभ्यस्त संज्ञा। अभ्यस्त संज्ञा हो जाने के कारण "नाम्यस्ताच्छतुः" से नुम् का निषेध हो गया। अब द्वितीया के एकवचन में चकासतम् सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—सुंभोभित कमलनाल के खण्ड की भाँति गौर शरीर पर स्वाभाविक चितकबरे एवं उज्जवल सूक्ष्मरोमावलि से युक्त सन्दुर मृर्गचर्म ओढ़े हुए और पृष्टास्तरण (झूल) से सुशोभित गज श्रेष्ठ ऐरावत के समान दिखाई देने वाले आकाश मार्ग से उतरते हुए व्यक्ति को श्रीकृष्ण ने ये नारद है ऐसा जाना।

**अलंकार** (१) वाच्योत्प्रेक्षा अलंकार है।

(२) ऐरावत की उपमा देने से उपमालंकार है।

**छन्दः**-वंशस्थः

पुनः कीदृशमित्याह—

अजस्त्रमास्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाड्गुष्ठनरवांशुभिन्नया।
पुरः प्रवालैरिव पूरितार्धया विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया॥ ९॥

पुरः प्रवालैरिव पूरितार्धया विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया अजस्त्रमास्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनरवांशुभिन्नया

**अन्वयः**—अजस्त्रम् आस्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनरवांशुभिन्नया (अमुंनारद पुरः प्रवालैः पूरितार्धया इव अच्छ स्फटिकाक्षमालया विभान्तम् इत्योबोधि)

**संस्कृतभावार्थः**—निरन्तरं वीणावादनात् उज्जवलाङ्गुष्ठनखकिरणमिश्रया, अग्रभागे विद्रुममणिभिः प्रवेशितार्धभागया इव निर्मलस्पटिकाक्षमालया शोभामानं नारदं अवगच्छत्।

**व्याख्या**—अजस्रम = न जस्यति मुश्चति इति अजस्रम् = निरन्तरम्। आस्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठ नखांशु भिन्नया = अंगुष्ठस्य नखः अंगुष्ठनखः तस्य अंशवः अंगुष्ठनखांशवः। वल्लक्याः गुणाः वल्ल्कीगुणाः आस्फालिताश्च ते वल्लकीगुमाश्च आस्फालितवल्ल्कीगुणाः , तेषां क्षतेन उज्जवलाश्च ते अंगुष्ठनखांशवश्च आस्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलांगुष्ठनखांशवः तैर्भिन्ना तया आस्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलांगुष्ठनरवांशुभिन्नया = ताडित वीणातन्त्री संघर्षेण उज्ज्वलाङ्गुष्ठनख किरण मिश्रया। पुरः = अग्रभागे। प्रवालै = विद्रुमैः। पूरितार्धयाः पूरितं अर्धम् यस्याःसा पूरितार्धा तया पूरितार्धया = प्रवेशितार्धभागया। इव = यथा। अच्छ स्फटिकाक्ष मालया = अक्षाणां माला अक्षमाला, अच्छाः स्फटिकाः अच्छस्फटिकाः अच्छस्फटिकानाम् अक्षमाला तया अच्छस्फटिकाक्षमालया = स्वच्छस्फटिकमणि निर्मितजयमालया। विभान्तं = प्रकाशमानम्। (अमुंनारद इत्यबोधि)

**कोशः**—"सततानारताश्रान्तसन्तताविरतानिशम्" इत्यमरः। "किरणोस्र ममूखांशु गभस्तिघाणिरश्मयः"इत्यमरः। "अथ विद्रुभः पुंसि प्रबालं पुंन पुंसकम्" इत्यमर अच्छो भल्लूके स्फटिकेऽभिमुखेऽव्ययम्" इतिहैमः॥

**व्याकरणम्**—अजस्रम-नजस्यतिमुञ्चति इति, न + जस् + रः।

विभान्तम् = विपूर्वक दीप्त्यर्थक भा धातु में कर्त्ता में शतृ प्रत्यय होकर द्वितीया के एकवचन में विभान्तम् सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—निरन्तर बजाये गये वीणा के तारों से क्षत होने (घिसने) के कारण स्वभावतः उज्ज्वल अंगूठे के नख की कान्ति से मिली हुई (अतएव) मूंगे से आधे भाग में परिपूर्ण सी निर्मल स्फटिक माला से सुशोभित (नारद को श्रीकृष्ण ने देखा)

**विशेष**—नारद जी वीणा को निरन्तर बजाते थे, अतएव उसके तारों से अंगूठा घिसकर कुछ रक्तवर्ण हो गया और स्वाभाविक स्वच्छ नख की कान्ति भी उससे लाल होकर स्फटिक माला पर पड़ रही है, वह ऐसी मालूम होती है कि इन स्फटिक माला के दानों में आधा मूंगा लगा है। उस स्फटिक माला से नारद जी शोभित हो रहे हैं।

**अलङ्कार**—(१) यहाँ तद्गुण अलंकार है। तद्गुणः स्वगुणत्यागात् तद्गुण भवति। यहाँ पर स्फटिक की अक्षमाला ने अपने श्वेतगुण का त्याग करके नख की लाल किरणों से रक्तगुण को ग्रहण कर लिया है। साहित्य दर्पण में तद्गुण का लक्षण निम्न प्रकार कहा गया है—

तद्गुणः स्वगुणत्यागात् अत्युत्कण्ठगुणग्रहः" इति।

(२) "पुरः प्रवालैरिव पूरितार्धया" में उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसमें उत्प्रेक्षा की गई है कि श्वेत स्फटिक माला पर लाल अंगुष्ठ की प्रभा पड़ने पर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो यह मूंगे की माला है।

**छन्दः**–वंशस्थः

पुनः मुनिंविशिनष्टि—

रणद्भिराघट्टनयानभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः ॥१०॥

**अन्वयः**—नभस्वतः आघट्टनया पृथक् रणद्भिः विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः स्फुटीभवद्ग्राम विशेषमूर्च्छनां महतीं मुहुर्मुहुः अवेक्षमाणम् (अंमु नारद इत्यबोधि)

**संस्कृतभावार्थः**—पवनाघातेन शब्दायमानैः सप्तभिः स्वरैः व्यक्तस्वरसंघातरोहावरोहकभेदाम् स्वकीयवीणाम् (महतीनामका) पुनः पुनः आलोकयन्तं नारदमुनिम् अवगच्छत्।

**व्याख्या**—नभस्वत= नभः आश्रयत्वेन अस्यास्तीति नभस्वात् तस्य नभस्वतः वायोः। आधट्टनया= आधातेन। पृथक्= अश्लिष्टं। रणद्भिः= ध्वनद्भिः, अनुरणनोत्पद्यमानैरित्यर्थः। विभिन्नश्रुतिमण्डलैः= श्रुतीनां मण्डलानि श्रुतिमण्डलानि विभिन्नतानि श्रुतिमण्डलानि येषां ते तैः विभिन्नश्रुति मण्डलैः= निश्चितसंख्या व्यवस्थित स्वराम्भक शब्द विशेष समूहैः। स्वरैः-स्वरन्ति शब्दायन्ते इति स्वरास्तैः स्वरैः= षड्जर्षभगान्धारमध्यमयपञ्चमधैवत निषाद नाम कैः स-रि-ग-म-प-ध-नि "इत्येवं लोके प्रसिद्धैः सप्तभिः स्वरैः। स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनां= स्फुटीभवन्त्यः ग्राम विशेषाणां मूर्च्छनाः यस्यां सा ताम् स्फुटीभवद्ग्राम विशेषमूर्च्छनाम्= व्यक्तिभवत् स्वरसंघाता रोहावरोह क्रमभेदाम्। महतीम्= महतीनाम्ना प्रसिद्धां स्वकीयवीणाम्। मुहुर्मुहु= पुनः पुनः वारम्बारम्। अवेक्षमाणम्= आलोकयन्तम्। (अमुं नारद इत्यबोधि) सम्प्रति स्वरादीनां स्वरूपमुच्यते-श्रुत्यारब्धमनुरणनं स्वरः इति।

श्रुत्युत्पन्नोऽअनुरणनात्मकः कर्णमधुरो ध्वनिविशेषः स्वर इत्युच्यते।
यथा

रत्नाकरे-क्षुत्यनन्तरभावीयः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।
स्वर रञ्जयति श्रोतुश्चितं स स्वर उच्यते॥ इति

स्वरोत्पादकश्शब्दविशेषश्श्रुतिः। यथा रत्नाकरे
"प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः।
सा श्रुतिःसम्परिज्ञेया स्वरावयनलक्षणा"।

संगीतशास्त्रे सप्तस्वराः त्रयोग्रामाः, एकविंशतिमूर्च्छनाः।
एकोनपंचाशच्च तानाः, द्वाविंशतिश्च श्रुतयो भवन्ति। यथोक्तम्—
"सप्तस्वरास्त्रयोग्रामाः मूर्च्छनास्त्वेकविशंति।

ताना एकोनपञ्चाशत् द्वयधिकाविंशति श्रुतिः ।।इति ।

सप्त स्वराः षड्जादयः, तदुक्तम्—

"श्रुतिम्यः स्युःस्वराःषड्जर्षभगान्धारमध्यमाः ।
पञ्चमो धैवतश्चाथ निषाद इति सप्त ते ।।
तेषां संज्ञाः "स रि ग म प ध नि इत्यपरामताः ।। इति ।

स्वरेषु श्रुतिसंख्या नियमाश्चायम्—

"चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपञ्जमाः ।
द्वे द्वे निषाद गान्धारों त्रिस्त्रिर्ऋषभधैवतौ" ।। इति ।

ग्रामस्य लक्षणं तु रत्नाकरे—

"यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽत्येकीभूता भवन्ति हिं ।
तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते ।।
षड्जग्रामो भवेदादौ मध्यमग्राम एवच ।
गान्धार ग्राम इत्येतद् ग्रामत्रयमुदाहृतम् ।। इति ।

तथा "नन्थावर्तोऽथ जीमूतः सुभद्रो ग्रामकास्त्रयः ।
षड्जमध्यमगान्धारास्त्रयाणां जन्महेतवः । इति

ग्रामत्रयेऽपि प्रत्येकं सप्त मुर्च्छना इत्येकविंशतिमूर्च्छना भवन्ति ।

तल्लक्षणं भेदाश्च रत्नाकरे यथा—

"क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणाम् ।
सा मुर्च्छेत्युच्यते ग्रामस्थाएताः सप्त सप्त च ।।
अराविनी विश्वभूता चान्द्री हेमा कपिर्दिनी ।
मैत्री बार्हस्पता चैतास्त्वेकविंशाति मूर्च्छनाः ।।

श्रुतयः द्वाविशांति विधाः, तासां नामानि यथा—

नान्दी चालनिका रसा च सुमुखी चित्राविचित्रा घना,
मातङ्गीसरसामृता मधुकरी मैत्री शिवा माधवी ।
बाला शार्ङ्गरवी कला कलरवा माला विशाला जया,
मात्रेति श्रुतयः पुराणविद्भिर्द्वा विंशति कीर्त्तिताः" ।।

**कोशः**—नभस्वतः= "नभस्वद्वात पवन पवभान प्रभञ्जनाः" इत्यमरः ।

महतीम्= "विश्वासो स्तु वृहती तुम्बुरोस्तु कलावती । महती नारदस्यस्यात् सरस्वत्यास्तु कच्छपी" । इति वैजयन्ती ।

**व्याकरणम्**—नभः= वह् बन्धने धातु से उणदि सूत्र "नहेर्दिविभश्च" से अमुन् प्रत्यय तथा ह को आन्तादेश होकर सान्त नभस् शब्द बनता है ।

रणद्भिः= रण् धातु शब्दार्थक तथा गमनार्थक है । यहाँ शब्दार्थक है । उससे शतृ प्रत्यय होकर रणत् और तृतीया के बहुवचन में रणद्भिः बनता है । अवेक्षमाणम्=

अव + ईक्ष + शानच्। आधट्टनया-आ पूर्व धट्ट + स्वार्थे णिच् + युच्। स्फुटीभवत्-स्फुट + च्वि + भू + शतृ + ङीप्।

**हिन्दी**—वायु के आघात से स्पष्ट ध्यान करते हुए एवं व्यवस्थित सात स्वरों से, जिससे (स्वर संघात रूप षड्जादि) तीन ग्रामों के स्वरों का आरोह तथा अवरोह का क्रम (मूर्च्छना) स्पष्ट (प्रतीत) हो रहा था, उसी महती नाम की अपनी वीणा को बार-बार देखते हुए नारदजी को भगवान् कृष्ण ने पहचाना।

**विशेष**—स्वर-श्रुति से उत्पन्न होने वाली गूंज स्वरूप उस श्रवण मधुर ध्वनि का नाम स्वर है जो कि श्रोता के हृदय को आनन्दित कर देती है। स्वर सात होते हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। इन्हीं को संक्षेप में "स-रि-ग-म-प-ध-नि" कहा गया है। इनमें श्रुतियों की संख्या का नियम इस प्रकार है—षड्ज, मध्यम तथा पञ्चम में चार-चार, निषाद तथा गान्धार में दो-दो, और ऋषभ तथा धैवत में तीन-तीन श्रुतियाँ होती हैं। श्रुति—सर्वप्रथम उचरित होने से ह्रस्व मात्रा वाला जो शब्द श्रोता के कानों तक पहुंचता है, वह श्रुति कहलाता है। ये श्रुति ही स्वरों को उत्पन्न करती है। ये २२ होती हैं। इनके नाम संस्कृत टीका में दिये जा चुके हैं।

**ग्राम**—स्वरों के समूह विशेष को ग्राम कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है: षड्ज, मध्यम तथा गान्धार।

**मूर्च्छना**—इन सात स्वरों के चढ़ान एवं उतराव (आरोह-अवरोह) के क्रम को मूर्च्छना कहते हैं। तीनों ग्रामों में अलग-अलग सात-सात मुर्च्छनाएँ होती हैं। कुल मिलाकर २१ मुर्च्छनाएँ होती हैं।

**अलङ्कार**—(१) अतिशयोक्ति अलङ्कार, बिना वीणा बजाये ही स्वरों का निकलना बताकर कवि ने अतिश्योक्ति अलङ्कार का प्रयोग किया है। (२) विभावना अलङ्कार—बिना कारण के ही (अंगुली के आघात के बिना ही) वीणा का बजना, विभवनालङ्कार को दर्शित करता है।

**छन्दः**—वंशस्थः

नारदस्य द्वारिका प्राप्ति वर्णयति—

निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानतीनतीन्द्रियज्ञान निधिर्नभः सदः।
सभासदत्सादितदैत्य सम्पदः पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः ॥११॥

**अन्वयः**—कृतानतीन् अनुब्रजतः नभःसदः निवर्त्य अतीन्द्रिय ज्ञाननिधिः सः सादितदैत्य सम्पदः चक्रिणः महेन्द्रालयचारु पदं सभासदत्।

**संस्कृतभावार्थः**—त्रिकाकलज्ञः नारदः अन्वागच्छतः सुरान् परावृत्य दानवैश्वर्यविधातकर सुदर्शनचक्रधर श्रीकृष्णस्य सम्पूर्ण वैभवसम्पन्नं भवनं सभासद।

**व्याख्या**—कृतानतीन् = कृताः आनतयः यैस्ते कृतानतयस्तान् कृतानतीन् = कृतप्रणामान्। अनुव्रजतः = अनु पश्चात् ब्रजन्ति इति अनुब्रजन्तस्तान् अनुव्रजतः =

पृष्ठतः समागच्छतः नभसदः= नभसि सीदन्ति (गच्छन्ति) ये तान् नभःसदः=देवान्। निवर्त्य= परावर्त्य अतीन्द्रियज्ञानिधिः= इन्द्रियमति क्रान्ताः (पदार्थाः) अतीन्द्रियाः तेषां ज्ञानं अतीन्द्रियज्ञानम् तस्य निधिः अतीन्द्रियज्ञाननिधिः= चक्षुरादीन्द्रियागोचर सर्ववस्तुदृष्टा, अतीतानागतवेत्ता। सः नारदः। सादितदैत्यसम्पदः= सादिताः विध्वस्तीकृताः दैत्यानां संपदोयेन सः तस्य सादितदैत्यसम्पदः= विध्वस्तीकृत दैत्यैश्वर्यस्य। चक्रिणः= चक्रं अस्यास्तीति चक्रिन् तस्य चक्रिणः= श्रीकृष्णस्य। महेन्द्रालय चारु= महेन्द्रस्य आलयः महेन्द्रालयः तद्वत्चारु मनोहरम् महेन्द्रालयचारु= इन्द्रभवनवत् मनोहरम्। पदं= स्थानम्। सभासदत्= समाससाद।

**कोशः**—"हृषीकं विषयीन्द्रियम्" इत्यमरः। "धीर्ज्ञानम्" इत्यमरः।

"असुरा दैत्यदैतेयदनुजेन्द्रारिदानवाः" इत्यमरः। "चक्री कोके कुलालेऽहो बैकुण्ठे चक्रवर्त्तिनि"। इति हैमः। "पदं शब्दे च वाक्ये च व्यवसायापदेशयो पादतच्चिह्नयोः स्थानत्राणयोः अंकवस्तुनः।" इति विश्वः।

**व्याकरणम्**—कृतानतीन्= कृ+क्त+आ+नम्+क्तिन्। अनुव्रजतः= अनु+व्रज+शतृ। नभः सदः= नभः+सद्+क्विप्। सभासदत्=सभ्+आ+सद्+ लुङ्-तिप् "पुपादिधुताल्दितः" इत्यङ्।

**हिन्दी**—इन्द्रियों से परे ज्ञान को जानने वाले अर्थात् परोक्ष भूत भविष्य के दृष्टा महर्षि नारद अपने पीछे आने वाले प्रणाम करने वाले नभचारी देवताओं को लौटाकर, दैत्य सम्पत्ति का नाश करने वाले सुर्दशन चक्रधारी श्रीकृष्ण के इन्द्रभवन के समान सुन्दर निवास स्थान पर पहुँचे।

**अलङ्कार** (१) छेकानुप्रास। श्लोक के प्रथम चरण में नवी, नवी तथा द्वितीय चरण में पदम्, पदम् की आवृत्ति से यहाँ छेकानुप्रास अलङ्कार है।

(२) वृत्यनुप्रास। यहाँ पूर्वार्ध में न कार की तथा उत्तरार्ध में सकार और दकार की कई बार आवृत्ति से वृत्यनुप्रास अलङ्कार हैं।

श्रीकृष्ण विहितं नारदस्वागतमाह—

पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावत्न भुवि व्यलीयत।
गिरेस्तदित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः॥१२॥

**अन्वयः**—पतत्पतङ्गप्रतिभः तपोनिधिः अस्यपुरः भुवि यावन्न व्यलीयत तावत् अच्युतः गिरेः तडित्वान् इव उच्चकैः पीठात् जवेन उदतिष्ठत्।

**संस्कृतभावार्थः**—यावत् सूर्यसदृश तपस्वी नारदः भूमितलम् नावतीर्ण स्तावत् श्रीकृष्णः उच्चपर्वतात् उत्थितः मेघसदृशः इव उच्चासनात् उदतिष्ठत्।

**व्याख्या**—पतन् चासौपतङ्गः पतत्पतङ्गः स प्रतिभायस्यसः पतत्पतङ्ग प्रतिमः= गगनात् अवतरन् सूर्यसदृश.। तपोनिधिः= निधीयते इति निधिः तपसां निधिः तपोनिधिः= तपस्वी, तपोमूर्ति नारदः इत्यर्थ। अस्यः श्रीकृष्णस्य। पुरः अग्रे। भुवि=

भूमौ। यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्। नव्यलीयत = नातिष्ठत्, नावतीर्ण इति। तावत् = तावत्कालम्। अच्युतः = नास्ति च्युतं स्खलनं यस्य सः अच्युतः = श्रीकृष्णः। गिरेः = मूधरात्। तडित्वान् = तड़ितः विद्युत अस्य सन्ति इति तडित्वान् = पयोधरः। इव = यथा। उच्चकैः = समुन्नतात्। पीठात् = आसनात्। जवेन = वेगेन। उदतिष्ठत् = उत्थितवान्।

**कोशः**—"पतंगो पक्षिसूर्योचि इत्यमरः।" पतंगः शलभेशाली प्रभेदे पक्षिसूर्ययोः क्लीवं सूते इति मेदिनी। अच्युतं = "पीताम्बरोऽच्युत" इत्यमरः। तडित्वान् = "धाराधरो जलधरस्तडित्वान् वारिदोऽम्बुभृत" इत्यमरः। पीठात् = "पीठमासनम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—पतंग-पततिगच्छतीति पतङ्ग उणदि सूत्र "पतेरंगच पक्षिणि" से अंगच् प्रत्यय होकर पतङ्ग बनता है। प्रतिभा-प्रतिपूर्वक मा धातु से "आतश्चोपसर्ग" से अङ् प्रत्यय प्रतिमा बनता है। अच्युतः गत्यर्थक च्युङ् धातु से "गत्यर्था" से क्त प्रत्यय होने पर च्युतम्। तव नञ् समास करने पर नास्ति च्युतमस्य इति अच्युतः बनता है। तडित्वान् = तड़ित् + मतुप् "मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः" से मतुपो मकारस्य वकार। उदतिष्ठत् = उत् पूर्वक स्था धातु से लङ् प्रथम पुरुष एकवचन का उदतिष्ठत् बनता है।

**हिन्दी**—आकाश से उतरते हुए सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी तपस्वी देवर्षि नारद भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख पृथ्वी पर भली प्रकार उतर भी नहीं पाये थे कि तब तक श्रीकृष्ण स्वागत के लिए अपने ऊंचे आसन से वेग पूर्वक इस प्रकार उठे मानों ऊंचे पर्वत से मेघ उठा हो।

**अलङ्कार**—अभूतोपमा, उत्प्रेक्षा

"पतत्पतंगप्रतिम" इस अंश के द्वारा बताया गया है कि सूर्य नीचे गिर रहा है किन्तु यह सम्भव नहीं है। इसलिए दण्डी आदि विद्वान् यहाँ अभूतोपमा "अलंकार मानते हैं। किन्तु आधुनिक आलंकारिक विद्वान् मानते हैं कि यहाँ अप्रसिद्ध वस्तु को उपमान बनाया गया है इसलिए यहा "उत्प्रेक्षा" अलङ्कार मानते हैं।

**विशेष**—इसमें नारद को तपोनिधि कहा गया है। तपस्या तीन प्रकार की होती है—शारीरिक, मानसिक और वाचिक। नारद जी में सभी तप थे। श्रीमद्भागवत में इन विविध तपों को इस प्रकार बताया गया है—

"देव द्विज गुरु आज्ञापूजनं शौचमार्जवम्। अ.१७ श्लोक १४
ब्रह्मचर्यमहिंसाच शरीरं तप ऊच्यते ॥
अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यं च प्रिय हितं चयत्। अ.१७ श्लोक १५
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनभात्मनिग्रहः। अ. १७ श्लोक १६

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

अथ नारदस्य भुवि पादन्यासमाह—

अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणै धृते कथञ्चित्फणिनां गणैरधः ।
न्यधायिषातामभिदेवकी सुतं सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले ॥ १३ ॥

**अन्वयः**—अथ धातु सुतेन प्रयत्नोन्नामितानमत्फणैः फणिनां गणैः भुवस्तले अधः कथञ्चित् धृते (सति) अभिदवेकी सुतं चरणौ न्यधायिषाताम् ॥

**संस्कृतभावार्थः**—अथ नारदेन प्रयासोन्नमितनिम्नीभवत्फणैः सर्पसमू हैः स्थापिते पृथिनीतले श्रीकृष्णस्यागे स्वकीय पादौ स्थाषितौ ।

**व्याख्या**—अथ= श्रीकृष्णम्युत्थानान्तरम् । धातुः ब्रह्मणः । सुतेन= पुत्रेण नारदेन इत्यर्थः । प्रयत्नोन्नमितानत्मफणैः= प्रयत्नेन उन्नमिताः प्रयत्नोन्नमिताः प्रयत्नोन्नमिता अपि आनमन्त्यःफुणा येषां तैः प्रयत्नोन्नमिता नमत्फणैः= प्रयासोपरिकृतभरावनतफणैः मुनिपाद न्यास भरादानमन्त्यः फणाःयेषां तैः। फणिनां= फणा सन्ति एषामिति फणिनस्तेषाम् फणिनां= सर्पाणाम् । गणैः= समूहैः। भुवस्तले= भूतले, पृथ्विव्याम् । अधः अधः प्रदेशे पाताले इत्यर्थः। कथञ्चित्= येन केन प्रकारेण, महाप्रयासेन इत्यर्थः। धृते= उत्तेलिते साते स्थापिते। अभिदेवकीसुतम्= देवस्याः सुतः देवकीसुतः देवकी सुतम् अभि इति अभिदेवकीसुतम्= देवकीसुतमभिलक्ष्मीकृत्य, श्रीकृष्ण स्याग्रे इत्यर्थः। चरणौ-पादौ । न्याधयिषाताम्= निहितौ, स्थापितौ इत्यर्थः।

**कोशः**—अथ= "अथाथो संशये स्यातामधिकारे च मङ्गले" इतिमोदिनी । फणा= "स्फटामांतुफणा द्वयोः इत्यमरः। भुविस्तले-" भू भूमिरचलानन्ता" इत्यमरः। "अथ स्वरूपयोरस्त्री तलम्" इति मोदिनी। चरणौ- "पादः पदङ्घ्रिश्चरणो ऽस्त्रियाम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—फणिनाम्= फण+इनिः। धृते= धृ+क्त प्रत्यय, सप्तमी एक वचन में धृते। अभिदेवकीसुतम्= लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये" इति अव्ययीभाव समास होता है। समास हो जाने के बाद "अव्ययादाप्सुपः" से अम् का लोप प्राप्त होता है किन्तु "नात्ययीभावदतोऽम् त्वपञ्चम्याः" से अम् के स्थान पर अम् आदेश ही हो जाता है। इस प्रकार "अभिदेवकीसुतम्" बनता है। न्यधायिषाताम्= निपूर्वकदधातेः कर्म में लुङ् "स्यसिचसी पुट" सूत्र से चिण्वदिटिमुक्। इस प्रकार न्यधापिषाताम्" बनता है।

**हिन्दी**—श्री कृष्ण के अपने स्वागत में खड़े हो जाने के बाद देवर्षि नारद ने बड़े प्रयत्न से ऊपर उठाये जाने पर भी ऋषि नारद के भार के कारण नीचे झुकते हुए फणों वाले साँपों के समूहों द्वारा बड़े प्रयास से धारण की हुई पृथिवी पर श्रीकृष्ण के सम्मुख अपने दोनों चरणों को स्थापित किया।

**अलङ्कार**—अतिशयोक्ति ।

यहाँ पौराणिक कथाओं के अनुसार पृथिवी को सर्पों के फणों पर स्थित बताया गया है। आकाश से उतरते हुए नारदजी भूमि पर पैर रखने लगे तो पृथिवी का भार इतना बढ़ गया कि सर्पों के फण प्रयत्नपूर्वक ऊपर उठाने पर भी नीचे की ओर झुकते जा रहे थे। इससे नारदजी के गौरव को प्रतिपादित किया गया है। इसलिए यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

**श्रीकृष्णकृतं नारदस्यपूजाप्रकारमाह—**

तमर्ध्यमर्ध्यादिकमादिपुरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूज्जत्।
गृहानुपैतं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ॥१४॥

**अन्वयः**—आदिपुरुषः सः अर्घ्यं तम् अहर्यादिकया सपर्यया साधु पर्यपूजत। मनीषिणः अपुण्यकृतां गृहान् प्रयणात् उपैतुम् अभीप्सवः न भवन्ति।

**संस्कृतभावार्थः**—पुराणपुरुषः श्रीकृष्णः नारदं अर्ध्यादिभिः अपूजयत्। विद्वांसः अविनीताम् गृहान् गन्तुं न वाच्छन्ति।

**व्याख्या**—आदिपुरुषः= पुरति अग्रेगच्छति इति पुरुषः आदिश्चासौ पुरुषः आदिपुरुष= "अन्येषामपि दृश्यते" इतिवादीर्घः। पुराणपुरुषः। सः= श्रीकृष्णः। अर्घ्यम्= पूजायोग्यम्। तम्= नारदम्। अर्ध्यादिकया= अर्ध्यम् आदि : यस्याः सा अर्ध्यादिका तया अहर्यादिकया= पाद्यार्ध्यादिपूर्विकया। सपर्यया= अर्चया, पूजया। साधु= यथाविधिः सम्यक् प्रकारेण पर्यपूजत् पूजयामास। मनीषिणः= ईवन्ते इति ईबिणः, मनसः ईषिणः मनीषिणः= सुधयः विद्वासः इत्यर्थः। अपुण्यकृताम्= पुण्यंकृतवन्तः इति पुण्यकृतः न पुण्यकृतः अपुण्यकृतस्तेषां अपुण्यकृताम्= दुष्टानां अविनीतानां, गृहान्= गृहाणि, वेश्मानि। प्रयणात्= स्नेहात्। उपैतुम= गन्तुम्। अभीप्सवः= अभिलावुका। न भवन्ति= ज जायन्ते।

**कोशः**—आदिपुरुषः—"क्षेत्रज्ञः आत्मापुरुषः"इत्यमरः। अर्घ्यम्= "मूल्ये पूजाविधावर्धः" इत्यमरः। सपर्यया:—"पूजानमस्यापचितिः सपर्याचर्यार्हणासमाः" इत्यमरः। गृहान्= गृहं गुहाः पुंसि च भूम्न्येव निकाय्यनिलयालयाः" इत्यमरः। मनीषिणः- विद्वान् विपश्चित् दोषज्ञः सन् सुधिः कोविदो बुधः। धीरो मनीषोज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः"। इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—अर्घ्यम्-अर्घ्यशब्द अर्ध अर्थ में "दण्डादिभ्योयत्" से यत् प्रत्यय करने पर बनता है। अर्ध्यादिकया= "शेषाद्विभाषा " से विकल्प से कप् प्रत्यय। सपर्यया-पूजार्थक सपर धातु से "कण्डवादिभ्यो यक्" से यक् प्रत्यय हो जाने पर "अप्रत्ययात्" सूत्र से "अ" प्रत्यय होने पर सर्पया सिद्ध होता है। पर्यपूपुजत्= परिपूर्वक पूज् धातु में विच्+तिप् के योग से पर्यपूपुजत् बनता है। अपुण्यकृताम्= "सुकर्मपाप मन्त्रपुण्येषु कृञः" से क्विप्। मनीषिणः मनस्+ईष+णिनीः। उपैतम-उप+आ+इण्+तुमुन्।

**हिन्दी**—पुराण पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ने पूजनीय नारदजी को अर्घ्यादि पूजा सामग्री से विधिपर्वूक पूजा की। (श्रीकृष्ण के लिए नारदजी की पूजा करना उचित ही था क्योंकि) विद्वान् लोग अविनयी व्यक्तियों के घर प्रेम से जाने की अभिलाषा नहीं करते हैं, अर्थात् विचारशील पूण्यशील व्यक्तियों के घर पर ही प्रेम से जाते हैं।

**अलङ्कार-अर्थान्तरन्यास।**

इस श्लोक के प्रथम पाद में विशेष का वर्णन है जिसका द्वितीय चरण में वर्णित सामान्य से समर्थन किया गया है इसलिए यहा अर्थान्तरन्यास अलंकार है

श्रीकृष्णस्यनीलगिरिसाम्यं नारदस्य च हिमगिरिसाम्यमाह—

न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ जनस्तुषाराञ्जनपर्वता विव।
स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनिश्र्चिरन्तनस्तावदभिन्यवी विशत् ॥१५॥

**अन्वयः**—जनः उत्थितौ एतौतुषाराञ्जनपर्वतौ इव यावत् न उदपश्यत् तावत् चिरन्तनः मुनिः स्वहस्तदत्ते आसने मुनिम् अभिन्यवीविशत्।

**संस्कृतभावार्थः**—द्वारिकानिवासिलोकः गौरयामवर्णों श्री कृष्णनारदौ न दृष्टावान् तावदेव श्री कृष्णेन स्वहस्तदत्ते आसने नारदः उपाविशतिस्म।

**व्याख्या**—जनः= द्वारकानिवासिलोकः। उत्थितौ= उत्तिष्ठमानौ। एतौ= श्रीकृष्ण नारदौ। तुषाराञ्जनपर्वतौ= तुषारश्च अञ्जनञ्च तुषारञ्जने तयोः पर्वतौ इति तुषाराञ्जनपर्वतौ= हिमकज्जलभूधरौ। इव- यथा। यावत्= यावत्कालम्। न उदपश्यत्= न दृष्टवान्। तावत्= तावत्कालम् चिरन्तनः= चिरे भवः इति चिरन्तनः= पुराणः सनातनः इत्यर्थः। मुनिः= ऋषिः कृष्णः इत्यर्थः। स्वहस्तदत्ते= स्वस्यहस्तौस्वहस्तौ ताभ्यां दत्तं स्वहस्तदतं तस्मिन् स्वहस्तदत्ते= स्वहस्ताम्यां समर्पिते। आसने= आस्यते अत्र इति आसनम् तस्मिन् आसने= विष्टरे। मुनिम्।= नारदम्। अभिन्यवीविशत्= स्वसम्मुखे उपवेशयामास॥

**कोशः**—चिरन्तनः= "पुराणे प्रतन प्रत्न पुरातन चिरन्तनाः इत्यमरः।मुनिः= वांचयमो मुनिः "इत्यमरः। यावत्= "यावत्तावच्च साकल्लेऽवधौमानेऽवधारणे" इत्यमरः। आसने= "विष्ठरं पीठ मासनम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—उदयश्यत् = उद्+दृश+लङ्+तिप्। उत्थितौ-उद्+स्था+क्तः। आसने= आस्+अधिकरणे ल्युट्। चिरन्तनः= चिरम्+ट्यु+तुड़ागमश्च। अभिन्यवोविशत्= अभि नि पूर्वक विशधातु से णिच् प्रत्यय तथा लुड़ लकार तिप् प्रत्यय होकर प्रथम पुरुष के एक वचन में अभिन्यवोविशत् सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—वहाँ उपस्थित लोगों ने खड़े हुए हिम पर्वत (हिमालय) तथा कज्जल पर्वत (नीलगिरी) के समान इन दोनों (नारदजी एवं श्रीकृष्ण भगवान) को जब तक देखा तभी तक चिरन्तन मुनि श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से दिये हुए आसन पर नारदजी को बैठाया।

**विशेष**—पुराणों में प्रसिद्ध है कि भगवान नारायण ने बहुत काल तक बदरिका आश्रम में तपस्या की थी। वे ही दूसरे जन्म में श्रीकृष्ण हुए। इसी से पूर्व जन्म के आधार पर श्रीकृष्ण भगवान् को चिरन्तन मुनि कहा है।

**अलङ्कार**—यहाँ गौरवर्ण के कारण नारदजी को हिमालय तथा कृष्ण वर्ण होने के कारण श्रीकृष्ण को नीलगिरी से उपमित किया गया है इसलिए उपमा अलङ्कार है। सहित्यदर्पण में लिखा है—

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यम् वाक्यैक्य उपमाद्वयोः। इति।

श्रीकृष्णस्य पुरो नारदस्य चन्द्र साम्यमाह—

महामहानीलशिलारुचः पुरो निषेदिवान् कंसकृषः स विष्टरे।
श्रितोदयाद्रेरभिसायमुच्चकैरचूचुरचन्द्रमसोऽभिरामताम् ॥१६॥

**अन्वयः**—महमहानीलशिलारुचः कंसकृषः पुरः उच्चकैः विष्टरे निषेदिवान् स अभिसायं श्रितोदयाद्रेः चन्द्रमसः अभिरामताम् अचूचुरत्।

**संस्कृतभावार्थः**—विशालनीलमणिकान्तिनिभस्य श्रीकृष्णस्याग्रे उच्चासने स्थितः नारदः सायं काले उदयतः चन्द्रमसः शोभां आधारयत्।

**व्याख्या**—महनीला चासौ शिलाव महानीलशिला महती चासौ महानील शिला महामहानीलाशिला तस्याः रुगिव रुक् यस्य तस्य महामहानीलशिलारुचः= वृहत् इन्द्रनीलमणिकान्तेः सिंहलद्विपोत्पन्ननीलोपलप्रभस्येति यावत्। तथाह भगवान् अगस्त्यः सिंहलस्थकरोद्भूता महानीलस्तुते वे स्मृताः" इति। कंसकृषः= कंसम् कर्षति कंसकृट् तस्य कंसकृषः=कंसारेः श्रीकृष्णस्य। पुरः= अग्रे। उच्चकैः = उन्नते। विष्टरे= आसने। निवेदिवान्= उपविष्ठवान्। सः= महर्षिनारदः। अभिसायम्= सायंकालम् अभि अभिसायम्= सान्ध्यसमये। श्रितोदयाद्रेः= श्रितः उदयाद्रिः येन सः श्रितोदयाद्रिस्तस्य श्रितोदयाद्रेः= प्राप्तोदयचलस्य। चन्द्रमसः= सोमस्य, चन्द्रस्य इत्यर्थः। अभिरामताम्= अभि= समन्तात्, रमन्ते जनाः अस्मिन्निति अभिरामः तस्यभावः अभिरामता ताम् अभिरामताम्= शोभाम् रमणीयतामितिभावः। अचूचुरत्= चोरितवान् प्राप्तवान्।

**कोशः**—रुच्= "स्युः प्रभारुग्रचिस्त्विडभाभाश्छविद्युति दीप्तयः" इत्यमरः। "विष्टरः विष्टरे= "विष्टरो विटपे दर्भमुष्टिः पीठाद्यमासनम्"। इत्यमरः। "विष्टरः पीठमस्त्रियाम्" इति त्रिकाण्डशेषः। चन्द्रमसः- हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः। विधुःसुधांशुः शुभ्रांशुरोषधीशे निशापतिः।" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—कंसकृषः= कंस पूर्वक लेखनार्थक तथा आकर्षणर्थक कृष धातु से "क्विप् च" इस सूत्र से क्विप् प्रत्यय होकर जशत्व चर्त्व होने के अनन्तर कंसकृद् प्रथमा के एक वचन में होता है और षष्ठी के एववचन में कंसकृषः रूप सिद्ध हुआ। विष्टरे= वि पूर्वक अच्छानयार्थाक स्तृञ धातु से "ऋदोरप्" सूत्र से अप् प्रत्यय होता है। अप्

प्रत्यय के बाद "वृक्षासनयोर्विष्टरः" सूत्र से स्तृ के सकार के स्थान पर निपातनात् षत्व हो गया। तदनन्तर विषतृ + अप् अवस्था में ऋ के स्थान पर अर् गुण होकर विष् तर तथा ष् रहने के कारण "ष्टुना ष्टुः" सूत्र से त के स्थान पर ट वर्ग ष्टुत्व होकर विष्टर रूप सिद्ध होता है। निषेदिवान् = नि + सद् + क्वसु। अचुचुरत = चुर् + णिच् + लुङ् + तिप्। "णिषिद्रुस्रुभ्यः" इति च्लेश्चङ्. अभिरामताम् = अभि + रम् + तल्।

**हिन्दी**—विशाल नीलमणि के खण्ड के समान कान्ति वाले, कंस के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख ऊंचे आसन पर बैठे हुए धवल कान्ति वाले नारदजी ने सांयकाल के सम्मुख उदयाचल पर्वत पर आरूढ हुए शशाङ्क की रमणीयता को चुरा लिया। अर्थात् चन्द्रमा से अधिक सुशोभित हुए।

**अलङ्कार**-उपमा + निदर्शन = सङ्कर

इस श्लोक में "महामहानीलशिलारुचः" में उपमालङ्कार है, क्योंकि इस अंश के द्वारा श्रीकृष्ण की उपमा इन्द्र नीलमणि से की गई है। कृष्ण श्याम वर्ण के माने जाते हैं और नीलम भी श्याम होता है। "अचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम्" में निदर्शना अलङ्कार है और यह उपमा पर आधारित है। अतः अंगागिभाव से यहाँ सङ्कर अलङ्कार है।

**श्रीकृष्णस्य प्रसन्नतामाह—**

विधाय तस्यापचितिं प्रसेदुषः प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः।
ग्रहीतुमार्यान्परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः ॥१७॥

**अन्वय**—यज्वनां प्रियः (सः) प्रसेदुषः अपचितिं विधाय, प्रकामम्
अप्रीयत। हि महानुभावाः आर्यान् परिचर्यया मुहुः
ग्रहीतुं नितान्तम् अर्थिनः (भवन्ति)

**संस्कृतभावार्थः**—यज्ञपुरुषः श्रीकृष्णः हर्षितनारदस्य पूजार्चानां विधाय अन्त्यतं प्रसन्नतोऽभवत्। यतश्महात्मानः पूज्यान् आतिथ्य सत्कारण वशीकर्त्तुम् अभिलाषुकाः भवन्ति।

**व्याख्या**—यज्वनांप्रियः = विधिना इष्टवन्तः यज्वानस्तेषां प्रियः यज्वनांप्रियः = यायजूकानाम्, विधिनेष्टावताम्। प्रियः = अभीष्टः। प्रसेदुषः = प्रसन्नचित्तस्य, तस्य = नारदस्य। अपरिचितिम् = पूजाम्। विधाय = कृत्वा। प्रकामम् = अत्यर्थम्, पर्याप्तम्। अप्रीयत = प्रीतोऽभवत् तुतोष इति। हि = यतः। महानुभावाः = भवनंभावः अनुगतो भावः अनुभावः महान् अनुभावः अस्ति येषांते महानुभावाः = महात्मनः महाप्रभावाः इति। आर्यान् = अर्यन्ते प्राप्यन्ते इति आर्याः तान् आर्यान् = श्रेष्ठान्, पूज्यान्। परिचर्यया = परिचरणमिति परिचर्यातया परिचर्यया = सेवया, पूजया इत्यर्थः। मुहुः = पुनःपुनः ग्रहीतुं = वशीकर्तुन। नितान्तम = अत्यन्तम्। अर्थिनः = इच्छुकाः। भवन्ति = जायन्ते।

**कोशः**—यज्वनाम्-"यज्वातुविधिनेष्टवान् "इत्यमरः। अपचितिम् = "पूजानमस्यापचिति सपर्याचर्हिणा" इत्यमरः। प्रकामम् = "कामं प्रकामं पर्याप्तं निकामेष्टं यथेप्सितम्"। इत्यमरः। महानुभावाः = "अनुभावः प्रभावेच सतां च मतिनिश्चिये" इत्यमरः। परिचर्यया = "परिचर्या तु शुश्रुषा" इत्यमरः। अर्थिनः— "अर्थमयोऽमिलाषः" इति मल्लिनाथः।

**व्याकरणम्**—विधाय-वि पूर्वक धा धातु + क्त्वा + ल्यप्। यज्वनां = यजि धातु से "सुपजोड्वनिप्" सूत्र से ड्वनिप् प्रत्यय होकर यज्वत् शब्द बनता है जो षष्ठी के बहुवचन में यज्यनाम् बनता है। अपचितिम् = अपपूर्वक पूजार्थक चाम् धातु से भाव में क्तिन् प्रत्यय होने के चाप् के स्थान पर "चि" आदेश हो जाता है, तब अपचिति रूपसिंद्ध होता है। अप्रीयत-प्री + लड़ + त। ग्रहीतुम् = ग्रह + तुमुन् "ग्रहोऽलिटिदीर्घः" इतिदीर्घः ग्रहीतुम। प्रसेदुष = प्र + सद् + क्वसुः। अर्थिनः = अर्थ शब्द से इनि प्रत्यय होकर अर्थी सिद्ध होता है और प्रथमा बहुवचन में अर्थिनः रूप बनता है।

**हिन्दी**—विधिपूर्वक यजन (यज्ञ) करने वालों के अभीष्ट श्रीकृष्ण भगवान् प्रसन्नचित्त वाले नारदजी की पूजा करके अत्यन्त हर्षित हुए। क्योंकि श्रेष्ठ लोग बार- बार सेवा के द्वारा वश में करने के लिए अत्यन्त अभिलाषी होते हैं।

**अलङ्कार**—अर्थान्तरन्यास

इस श्लोक में पूर्वार्ध में विशेष का वर्णन है उसी का उत्तरार्ध में वर्णित सामान्य से समर्थन है। इसलिए यहाँ अर्थान्तर न्यास अलंकार है।

नारदाभिषिक्तं जलं श्रीकृष्णो जग्राहेत्याह—

अशेषतीर्थापहृताः कमण्डलोनिधाय पाणावृषिणाऽभ्युदीरिताः।
अघौघविध्वंस विधौ पटीयसीर्नतेन मर्ध्ना हरिरगहीदपः ॥१८॥

**अन्वयः**—अशेषतीर्थोपहृताः कमण्डलोः पाणो निधाय ऋषिणा अभ्युदीरिताः अघौघविध्वंससविधौ पटीयसी अपः हरिः नतेन मूध्नर्ता अग्रहीत्॥

**संस्कृतभावार्थः**—नारदमुनिना सर्वतीर्थेभ्यः आनीताः कमण्डलात् स्वहस्ते गुहीत्वा सम्पूर्णपाप नाश करणे अभिषिक्ताः जलानि कृष्णः नतेनमस्तकेन जग्राह।

**व्याख्या**—अशेषतीर्थोपहृताः = शिष्यन्ते इति शेषानि न शेषानि अशेषानि तीर्थन्ते इति तीर्थानि अशेषानि च तानि तीर्थानि अशेषतीर्थानितेभ्यः उपहृताः अशेपतीर्थोपहृताः = सम्पूर्ण तीर्थेभ्यः आनीताः। कमण्डलोः = कमण्डलुतः जलप्रत्रात् इत्यर्थः पाणौ = स्वकरे। निधाय = स्थापयित्वा गृहीत्वा वा। ऋषिणा = ऋषाति ज्ञानमति इति ऋषि स्तेन ऋषिणा = नारदेन। अभ्युदीरिताः = अभिषिक्ताः आक्षिप्ताः। अघौघविध्वंस विधौ = अधानां ओधः अघौघः तस्य विध्वंसः अघौघविध्वंसः तस्यविधि

स्तस्मिन् अघौघविध्वंसविधौ = पाप समूहानां विनाश करणे। पटीयसी = अतिशयेन पटव्यः ताः पटीयसी = अतिशयसमर्थाः। अपः = जलानि जलबिन्दवः इत्यर्थः। हरिः = श्रीकृष्णः। नतेन = विनीतेन, नम्रेण। मूर्ध्ना = शिरसा। अग्रहीत् = अङ्गकृतवान्वीचकार इत्यर्थः।

**कोशः**—तीर्थः "निपानागमयोस्तीर्थमृषि जुष्टे जले गुरौ"। इत्यमरः।

कमण्डलोः = अस्त्री कमण्डलुः कुण्डी"। इत्यमरः। अघः = "कलुषं वृजिनैनोऽघमंहोदुरित दुष्कृतम्। इत्यमरः। विधिः = "विधिर्विधाने देवेच"। इत्यमरः। मूर्ध्ना = "उन्तमाङ्गशिरः शीर्ष मूर्धानामस्तकोऽस्त्रियाम्" ।इत्यमरः। आपः = "आपः स्त्री भूम्नि वार्वारिसलिलं कमलं जलम्"। इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—शेषानि = शिष्लृ धातु से घञ् प्रत्यय होकर शेषम् बहुवचन में शेषानि बनता है। तीर्थः = तृ धातु से उणादीय थक् प्रत्यय लगकर तीर्थ शब्द बनता है। अभुदीरिताः = अभि + उद् + ईर् + स्वार्थेणिच् + क्तः। पटीयसी = पटुः + ईयसुन् + उगतिश्च" इति ङीप्। अग्रहीत् = ग्रह + लुङ् + तिप्।

**हिन्दी**—समस्त तीर्थों से लाये गये, कमण्डलु से अपने हाथ में लेकर महर्षि नारद द्वारा छिड़के गये, सम्पूर्ण पापों का नाश करने में परम समर्थ जलो (जल बिन्दुओं) को श्रीकृष्ण भगवान् ने मस्तक झुकाकर स्वीकार किया।

श्रीकृष्णाधिष्ठितासनस्य शोभामाह—

स काञ्चने यत्र मुनरनुज्ञया नवाम्वुदश्याम तनुर्न्यविक्षत।
जिगाय जम्बूजनित श्रियः श्रियं सुमेरु श्रृंगस्य तदा तदासनम् ॥१९॥

**अन्वयः**—नवाम्बुदश्यामतनुः स मुनेः अनुज्ञया काञ्चने यत्र न्यविक्षत। तत् आसनं तदा जम्बूजनित श्रियः सुमेरु श्रृंगस्य श्रियं जिगाय।

**संस्कृतभावार्थः**—नवपयोदश्यामशरीरः श्रीकृष्ण मुनिनारदस्याज्ञया यदा स्वर्णासने उपविशत् तदा तदासनं जम्वूफलाऽहित शोभस्य मेरुपर्वतस्य शोभां तिरश्चकार।

**व्याख्या**—नवाम्वुदश्यामतनुः = अम्बुददाति इति अम्बुदः नवश्चासौ अम्बुदः नवाम्बुदः स इव श्यामः तनुः यस्यसः नवाम्वुद श्यामतनुः = नूतन घनश्यामशरीरः नीलमेघ सदृश् कृष्णवपुः। सः = श्रीकृष्णः। मुनेः = नारदस्य। अनुज्ञया = अनुशासनेन, आज्ञया। काञ्चने = कञ्चनस्य विकारः काञ्चनम् तस्मिन काञ्चने = सौवर्णे, स्वर्णभये। यत्र = यस्मिननासने। न्यवविक्षत् = उपविष्ठः। तत् आसनम् = तत् काञ्चनं सिंहासनम्। तदा = तत्समये। जम्बूजनितश्रियः = जम्बूभिः जनिता उत्पादिता श्रीः शोभा यस्य सः जम्बूजनित श्री तस्य जम्बूजनितश्रियः = जम्बूफलोत्पादित शोभस्य, जम्बू वृक्ष समुत्पादित सौन्दर्यस्य सुमेरुश्रृंगस्य = सुमेरोः श्रृंगमिति सुमेरु श्रृंगम् तस्य सुमेरु श्रृंगस्य = सुमेरु पर्वतशिखरस्य। श्रियम् = शोभाम्। जिगाय = तिरश्चकार, विजितवान इत्यर्थः।

**कोशः**—नव-"प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्योनवीनो नूतनोनवः"। इत्यमरः। काञ्चने= "स्वर्णम् सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम्। चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने"। इत्यमरः। सुमेरुश्रृंगस्य:- "मेरुः सुमेरुहैमाद्रि रत्नासानुः सुरालयः"। इत्यमरः। श्रृंगस्य= कूटोऽस्त्री शिखरं श्रृंगम् प्रपातस्त्वतटो भृगु"। इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—अनुज्ञया= अनुपूर्वक ज्ञा धातु से "अंङ्" प्रत्यय तथा टाप् होकर अनुज्ञा शब्द बनता है। तृतीया का एकवचन में अनुज्ञयया बनता है। न्यूविक्षत-निपूर्वाद विश धातोर्लुङि "वेर्विश" इत्यात्मनेपदे "शलइगुपधादानेटः क्सः" सूत्र से च्लेः क्सः। जिगाम= जि + लिट् + तिप् + णल् "सन्लिटोर्जे" से कुस्त्वम्।

**हिन्दी**—जल से परिपूर्ण नीवनमेघ के समान श्याम शरीर श्रीकृष्ण नारदजी के आदेश से सोने के जिस सिंहासन पर बैठे उस आसन ने उस समय जामुन के वृक्ष से सुशोभित सुमेरु पर्वत के शिखर की शोभा को जीत लिया।

**अलङ्कार**—उपमा + अनुप्रास = संसृष्टि

इस श्लोक में स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण की उपमा सुमेरु पर्वत पर स्थित जामुन के वृक्षफल से की गई है, अतः यहा उपमालंकार है। श्लोक पूर्वार्ध में "न" कार तथा उत्तरार्ध में "जकार एवम्" श्रियः श्रियम्" तदा तदा में अनुप्रास अलङ्कार है। इसलिए उपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है।

श्रीकृष्णस्य समुद्रसादृश्यमाह—

स तप्तकार्तस्वरभास्वरांबरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः।
विदिद्युतेवाडवजातवेदसः शिखाभिराश्र्लिष्ट इवाम्भसांनिधिः ॥२० ॥

**अन्वयः**—तप्तकार्त्तस्वरभास्वरम्बरः कठोरताराधिप लाञ्छनच्छविः सःवाडवजातवदेसः शिखाभिः आश्लिष्टः अम्मसां निधिः इव विदिद्युते।

**संस्कृतभावार्थः**—पूर्णचन्द्रचिह्नकान्तिःपीताम्बरः श्रीकृष्णः वाडवाग्नेः शिखाभिः व्याप्तः समुद्रः इव शुशुभे।

**व्याख्या**—तप्तंच तत् कार्तस्वरं तप्तकार्तस्वरं तद्वत् भास्वरं अम्बरं यस्म सः तप्तकार्तस्वर भास्वराम्वरम्= अग्निशोधित सुवर्णवदुज्ज्वल वसनः, पीताम्बरःइत्यर्थः। कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः= ताराणाम् अधिपः तारधिपः, कठोरश्चासौ तराधिपः कठोर ताराधिपः कठोर ताराधिप तस्य लाञ्छनम् कठोरताराधिपलाञ्छनम् तस्य छविः इव छविः यस्य सः कठोर ताराधिपलाञ्छनच्छविः= पूर्णचन्द्रचिह्नद्युतिः। सः= श्रीकृष्णः। वाडवजातवेदसः= वाडवायां घोटिकायां भवो वाडवः, वाडवश्चासौ जातवेदाश्च वाडवजातवेदाः तस्य वाडवजातवदेसः= वडवानलस्य, वडवाग्ने। शिखाभिः ज्वालाभिः। आश्लिष्टः= व्याप्तः। अभ्भसां= अपाम् जलानां निधिः= निधीयते इति निधिः= कोषः। इव= यथा। विदिद्यते= शुशुभे।

**कोशः**—कठोरताराधिपलम्छनच्छविः= "अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः"। इत्यमरः। लाच्छनम्= "कलङ्कौ लाञ्छनं च चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्"। इत्यमरः। छविः सुषमा परमा शोभा कान्तिर्धुतिच्छविः"। इत्यमरः। कठोरौ पूर्णकठिनौ" इत्यमरः। "और्वस्तु बाडवो वाडवानलः" इत्यमरः। वहेर्द्वयोर्ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—जातवेदसः= जातपूर्वक ज्ञानार्थक विद्धातु से णिच्+असुन्= जातवेद्स। विदिद्युते= वि+द्युत+लिट्-त-ए, द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् इति सम्प्रसारणम्। आश्लिष्टः= आ+श्लिष् + क्तः। निधिः= निपूर्वक धा धातु से "उपसर्गे धोः किः "इस सूत्र से" कि "प्रत्यय होने पर निधिः सिद्ध होता हैं।

**हिन्दी**—तपाये हुए सोने के समान देदीप्यमान वस्त्र धारण करने वाले, पूर्ण चन्द्रमा के चिह्न (कलंङ्क) के समग्न श्याम कान्ति वाले, श्रीकृष्ण भगवान्, वाडवानल की लपटों से व्याप्त समुद्र के समान सुशोभित हुए।

**विशेष**—कठोरताराधिप= पूर्ण चन्द्रमा (कठोर का अर्थपूर्ण भी होता हैं) तारा अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों का नाम है, जो दक्ष की कन्या बताई गई है और शास्त्रों के अनुसार चन्द्रमा को ब्याही गई हैं। इसीलिए चन्द्रमा का नाम ताराधिप है।-

**वाडवाग्निः**—सागर में होने वाली आग का नाम वाडवाग्नि है। कहते हैं हैहय वंश के क्षत्रियों के भय से एक गर्भवती भृगु की पत्नी का गर्भ स्खलित हो गया। इससे क्रोधित हुए भृगु के तेज से वे अन्धे हो गये। इसके बाद बड़े अनुनय-विनय के बाद उन्होंने ऋषि को मनाया। उनकी प्रार्थना से प्रसन्न हुए ऋषि ने अपनी उस क्रोध की अग्नि को समुद्र में फैंक दिया, जो घोड़े की गर्दन बनकर समुद्र में रहता है। देखिये महाभारत में लिखा है—

ततस्तं क्रोधजं तात औवोंऽग्निं वरुणालये।
उत्ससर्ग स चैवायमुपयुङ्क्ते महोदधौ।
महद् हमशिरो भूत्वा पन्तद्वैदविदो विदुः।" (महाभारते)

**अलङ्कार**—उपमा

यहाँ वाडवाग्नि की लपटों के घिरे समुद्र की उपमा पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण से दी गई है। समुद्र एवं श्रीकृष्ण समान रंग वाले हैं।

नारदतेजांसि चन्द्रकिरणैरुत्प्रेक्ष्यते—

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः ॥२१॥

**अन्वयः**—रथाङ्गपाणेः रोचिषां पटलेन संवलिताः ऋषिस्त्विषः नक्तं तरोः चलत्यलाशन्तरगोचराः तुषारमूर्ते अंशवः इव विरेजिरे॥

**संस्कृतभावार्थः**—श्रीकृष्णस्य कान्तीनाम् समूहेन संयुक्ता नारदस्य कान्तयः

वायुना कम्पित वृक्षपत्रान्तरप्रविष्टाः चन्द्रमसः किरणा इव शुशुभे।

**व्याख्या**—रथाङ्गपाणेः= रथस्य अङ्गम् रथाङ्गम्, रथाङ्गम् पाणौ यस्यसः रथाङ्गपाणिः तस्य रथाङ्गपाणेः= चक्रपाणेः श्रीकृष्णस्य। रोचिषाम्= तेजसाम्, छवीनाम्। पटलेन= समुच्चयेन, समूहेन इत्यर्थः। संवालिताः= मिश्रिताः संयुक्ताःवा। ऋषिस्त्विषः= ऋषेः स्त्विषः इति ऋषिस्त्विषः= मुनितेजांसि नारदकान्तयः। नक्तं= रात्रौ निशायाम्। सप्तम्यर्थेऽव्ययमिदम्। तरोः= पादपस्य। चलत्पलाशान्तरगोचराः= चलन्ति च तातिनि पलाशानि च चलत्पलाशानि तेषाम् अन्तराणि चलत्पलाशान्तराणि तानि एव गोचरः येषां वे चलत्पवलाशनतर गोचराः= चञ्चलपत्रविवराश्रयः वायु कम्पिततरुपर्णमध्य प्रविष्टाः इत्यर्थः। तुषारमूर्त्तें = तुषारा शीतलमूर्त्तिः यस्य सः तस्य तुषारमूर्त्तेः तुषारोमूर्त्तिः यस्य सः तुषारमूर्त्तिस्तस्य तुषारमूर्त्तेः= शीतांशोश्चन्द्रमसः। अंशवः= किरणाः रश्मयः। इव= यथा। विरेजिरे= शुशुभे। इव इति उत्प्रेक्षायाम्।

**कोश**—रोचिः= "रोचिः शोचिरुभे क्लीवे प्रकाशो द्योत आतपः"। इत्यमरः। पटलेनः—"छदिनैत्ररुजोः क्लीवं समूहे पटलं नना "। इत्यमरः। पटलं तिलके नेत्र रोगे छदिषि संचये। पिटके परिवारे"। इतिहैमः। त्विषः "स्युः प्रभारुग्रुचिस्त्वड् भामाश्छविद्युतिदीप्तयः"। इत्यमरः।

नक्तम्= "अथ दोषा च नक्तं च रंजनावपि"। इत्यमरः।

तरोः= "वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादूपस्तरुः।" इत्यमरः।

पलाश= "पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णम् छदः पुमान्"। इत्यमरः।

अन्तर= "अन्तरमवकाशावधिः"। इत्यमरः। अंशवः= "किरणोस्त्रमयूखां शुगभस्ति घृणिरश्मयः"। इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—रथाङ्गपाणेः= "प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्पौ भवतः" इति वार्तिकेन पाणेः परनिपातः। संवलिताः= सम् पूर्वक वल् धातु से (संचरणार्थक) क्तः प्रत्यय तथा इट् का आगम होकर संचलित स्त्रीत्व विवक्षा में टापू संवलिताः। चलत्= चल् धातु से शतृ प्रत्यय चलत्। विरेजिरे= वि + राज् + लिट् + झ + इरेच्।

**हिन्दी**—चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण की श्याम कान्ति के समूह से मिलकर नारदजी की कान्ति रात्रि में वृक्ष के हिलते हुए पत्तों के मध्य से दिखाई पड़ने वाली चन्द्रकिरणों की शोभा के समान सुशोभित हुई। अर्थात् गौरवर्ण नारद तथा श्यामवर्ण कृष्ण की आभा उसी प्रकार सुशोभित हो रही है जैसे घने वृक्ष के पत्तों के मध्य में पड़ती हुई चन्द्रमा की किरणों से कहीं श्वेत और कहीं पर नीली दिखाई पड़ने वाली छाया मिश्रित दिखाई पड़ती है।

**अलङ्कार**—उत्प्रेक्षा अलङ्कार

चञ्चल पेड़ों के पत्तों के मध्य दिखाई देने वाली चन्द्र किरणों की भाँति में उत्प्रेक्षा की गई है, इसलिए उत्प्रेक्षा अलंकार है। सहित्यदर्पण के लिखा है—

"सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेनयत्"

**टिप्पणी**—"गोचर" शब्द का अर्थ है—आश्रय। गावः इन्द्रियाणि चरन्ति अस्मिन्निति गोचरः अर्थात् जो इन्द्रियों का विषय हो।

श्रीकृष्ण नारदयोरेकवर्णतामाह—

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांसुपाण्डुभिः।
परस्परेणच्छुरितामलच्छवी तदैकवर्णाविवतौ वभूवतुः ॥२२॥

**अन्वयः**—प्रफुल्लतापिच्छनिभैः सप्तच्छदपांसु पाण्डुभिः शुभैः अभीषुभिः परस्परेण छुरितामलच्छवी तदा तौ एकवर्णौ इव वभूवतुः।

**संस्कृतभावार्थः**—विकसिततमाल पुष्प सदृशैः सप्तपर्णपुष्पपरागशुभ्रैः कान्तिभिः मिश्रित निर्मलप्रभौ श्रीकृष्णनारदौ समानवर्णौ इव अभूताम्।

**व्याख्या**—प्रफल्लतापिच्छनिभैः= तापिच्छस्य पुष्पं तापिच्छम्, प्रफुल्ल्तीति प्रफुल्लम् प्रफुल्लम् च तत् तापिच्छम् प्रफुल्लतापिच्छम् तेन सदृशैः प्रफुल्लतापिच्छानिभैः= विकसित तमालपुष्पसदृशैः, पुष्पिततमालपुष्पनीलैरितियावत्। सप्तच्छद पांसुपाण्डुभिः= सप्तच्छदाः पर्णानिपर्वसु यस्य (वृन्ते सप्तच्छदाः यस्य) स सप्तच्छदः तस्य विकारः (पुष्पम्) सप्तच्छदम् तानि सप्तच्छदानि, सप्तच्छदानां पांशवः सप्तच्छपांशवः ते इव पाण्डवः तैः सप्तच्छदपांसुपाण्डुभिः= सप्त पर्ण वृक्ष पुष्पपरागधवलैः, सप्तपर्णवृक्षपुष्पपरागवत् शुभ्रैः। शुभैः= मनोहरैः पापक्षयकारकैः वा। अभीषुभिः= मयूखैः, देहतेजोभिः। परस्परेण =परः परम् परस्परम्तेन परस्परैण = अन्योन्यम्। छुरितामलच्छवी= छुरिते अमले छवी ययोस्तौ छुरितामलच्छवी= मिश्रतोज्वलकान्ती। तदा= तस्मिन् समये। तौ= श्रीकृष्णनारदौ। एकवर्णौ इव= एको वर्णौ ययोस्तौ एकवर्णौ इव = समान रूपौं इव। वभूवतुः= अभूताम्।

**कोशः**—तापिच्छम्—"कालस्कन्धस्तमालस्यान्तापिच्छोऽपिन्पुंसके"। इत्यमरः।

**निभः**—"निभसङ्काशनीकाश प्रतीकाशोपमादयः।" इत्यमरः। सप्तच्छदः "सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विमलच्छदः"। इत्यमरः।

**अभीषुः**—"अभीषु प्रग्रहे रश्मौ" इतिशाश्र्वतः।

**पांसुः**—"रेणुईया स्त्रियां धूलि पांशुर्ना ना द्वयो रजः"। इत्यमरः।

**छविः**—सुषमा परमाशोभा कान्तिर्द्युतिच्छविः"। इत्यमरः।

**वर्णः**—वर्णो द्विजादा शुभ्लादौ स्तुतौ वर्णं तु वाक्षरे"। इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—प्रफुल्ल्-प्र उपसर्ग पूर्वक फुल्ल विकसने धातु से "नन्दिग्रहिपचादिभ्योःल्युणिन्यचः" सूत्र से अच् प्रत्यय होकर प्रफूल्लम्। **तापिच्छम्**—तापिच्छस्य पुष्पम्"इस विग्रह से "फलेलुक्" इस नियम से तद्वितीय प्रत्यय का लुक् हो जाता है तथा "द्विहीनं प्रसवे सर्वम्" से नपुंसकत्व हो जाने से तापिच्छम् बनता है।

वभूवतुः= भू धातु से लिट्लकार= भू+लिट्+तस्+ अतुस्।

**हिन्दी**—विकसित तमाल के फूलों के समान नील कान्ति वाले तथा सप्तपर्णा के फूल के समान श्वेतवर्ण की किरणों से परस्पर मिश्रित कान्ति वाले भगवान् श्रीकृष्ण तथा देवर्षि नारद उस एक रंग के हो गये। तात्पर्य यह है कि कृष्ण श्याम रंग के थे और नारद गौर वर्ण के थे। दोनों आमने सामने आसन पर विराजमान थे। इसलिए दोनों की शरीर की शोभा मिलकर समान हो रही थी।

**अलङ्कार**—उत्पेक्षा

नारद और श्रीकृष्ण के एकवर्ण हो जाने की उत्प्रेक्षा की गई है।

श्रीकृष्णस्य नारदशुभागमनजन्यं हर्षमाह—

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्तियस्यां सविकासमासत।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवामुदः ॥२३॥

**अन्वयः**—युगान्तकालप्रतिसंहतात्मनः, कैटभद्विषः यस्यां तनौ जगन्ति। सविकासम् आसत। तत्र तपोधनाभ्यागमसम्भवाः मुदः न ममुः।

**संस्कृतभावार्थः**—कल्पान्त काले कुक्षि स्थापित चराचरस्य कैटभारेः श्रीकृष्णस्य यस्मिन् देहे सम्पूर्ण लोकाः सविस्तरम् अतिष्ठन् तस्मिन् देहे नारदस्यगामन जनितप्रीतयः न मान्ति स्म।

**व्याख्या**—अन्तश्चासौ कालः अन्तकालः, युगानाम् अन्तकालः युगान्तकालस्तस्मिन् युगान्तकाले आत्मनि प्रतिसंहृता आत्मनः जीवाः येन सः युगान्तकालप्रतिसहंतात्मा तस्य युगान्तकालप्रतिसंहताम्नः= प्रलयसमयोपसंहृतजीवस्य, कल्पक्षयकुक्षिस्थापितचराचरस्य। कैटभद्विष= कैटभं द्वेष्टि कैटभद्विट् तस्य कैटभद्विषः= कैटभशत्रोः। यस्यां तनौ= यस्मिन् शरीरे। जगन्ति= लोकाः सविकासम्= विकासेन यह यथा स्यात् तथा सविकासम्= सविस्तरम् यथासुख मिति। आसत= उषितानि। तत्र= तस्मिन् शरीरे। तपोधनाभ्यागम सम्भवाः= तप एव धनं यस्यासौ तपोधनः। तस्य अभ्यागमः तपोधनाभ्यागम, तस्मात् तेन वा सम्भवन्ती तपोधनाभ्यागमसम्भवाः= तपस्वी श्रेष्ठ नारदागमन प्रभवाः। मुदः= हर्षाः न ममुः। न मान्तिस्म। अतिरिच्यन्ते इत्यर्थः।

**कोशः**—तनुः= कायो देहः क्लीवपुसोः तनुस्तनू। इत्यमरः।

जगत्= "त्रिष्वथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्"। इत्यमरः।

मुदः= मुत् प्रीति प्रभदो हर्ष प्रमोदामोदसम्पदाः"। इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—द्विषः—द्विष् धातु से क्विप् प्रत्यय होकर द्विट् षष्ठी एक वचन में द्विषः बनता है। विकासम्= वि उपसर्ग कास् धातु से घञ् प्रत्यय होकर विकासम्= वि उपसर्ग पूर्वक कस् धातु से घञ् के लङ् लकार प्रथम पुरुष का रूप आसत होता है।

सम्भवाः= सम् उपसर्ग पूर्वक "भू" धातु से "नान्दिग्रहियचादिभ्योः ल्युणिन्यचः सूत्र से अच् प्रलय होकर सम्भवःसिद्ध होता है।

मुदः—मुद् धातु से "संपदादिभ्यः क्विप्" इस वार्त्तिक से क्विप् प्रत्ययः होकर मुदः सिद्ध होता है। ममुः—मा + लिट् + झि + उस्।

**हिन्दी**—प्रलय काल के अन्त में समस्त चराचर को अपने शरीर में लीन कर लेने वाले और कैटभ नामक असुर के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण के जिस शरीर में विस्तारपूर्ण ब्रह्माण्ड समा गये थे, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण के उसी शरीर में देवर्षि नारद के आगमन से उत्पन्न हुआ हर्ष न समा सका।

**विशेष**—सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग भेद से युग चार हैं, इनका अन्त प्रलय कहलाता है। वेदों के अनुसार प्रलय काल में समस्त जीव ब्रह्म के शरीर में लीन हो जाते हैं।

**अलङ्कार**—अतिशयोक्ति

(यह सम्बन्ध में असम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति है)

साहित्यदर्पण में कहा गया है—

"आश्रयाश्रयिणोरेक स्याधिक्येऽधिकमुच्यते"।

**टिप्पणी**—श्रीकृष्ण भगवान् (विष्णुजी) प्रलयकाल में समस्त जीवों का संहार करने के बाद उन सबको अपनी कुक्षि में स्थापित करके क्षीरसागर में सो जाते हैं। ऐसा पुराणों में वर्णन है। गीता के नवम अध्याय के सप्तम श्लोक में कहा है—

"सर्वभूतानि कौन्तेय। प्रकृतिं यान्ति माभिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥९/७॥

कैटभ राक्षस के विषय में पौराणिक कथा इस प्रकार है—कल्पान्त में क्षीरसागर में शयन करते हुए श्री विष्णु भगवान् के कान के मैल से उत्पन्न मधु और कैटभ ने विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल में रहने वाले ब्रह्मा को मारना चाहा। भयभीत ब्रह्मा ने विष्णु भगवान् को जगाया। विष्णु भगवान् ने उन दोनों असुरों से पाँच हजार वर्ष तक युद्ध किया और बाद में सुदर्शन चक्र से उनका वध कर दिया। उस मधु और कैटभ की मेदा से पृथिवी बनी इसीलिए पृथिवी का नाम मोदिनी पड़ा।

श्रीकृष्णस्य पुण्डरीकाक्षसंज्ञाया सार्थकतामाह—

निदाधधामनमिवाधिदीधितिं मुदा विकासंमुनिमभ्युपेयुषी।
विलोचने विभ्रदधिश्चित श्रिणी स पुण्डरीकाक्षइतिस्फुटोऽभवत् ॥२४॥

**अन्वयः**—निदाघधामानम् इव अधिदीधितम् मुनिम् अभिमुदा विकासम् उपेयुषी अधिश्रितश्रिणी विलोचने विभ्रत स पुण्डरीकाक्षः इति स्फुटः अभवत्।

**संस्कृतभावार्थः**—सूर्यम् इव अधिकप्रभायुक्तं नारदमुनिं लक्ष्मीकृत्य हर्षेण प्रफुल्ले लोचने दधानः श्रीकृष्णः पुण्डरीकाक्षाभिधानः स्पष्टऽमभवत्।

**व्याख्या**—निदाघधामानम् = नितरां दहयते अनेनेति निदाघम् निदाघम् धाम यस्यासौ निदाघधामा तम् निदाघाधामानम् = उष्णतेजसं, सूर्यम्। इव = यथा। अधिदीधितम् = अधिगता दीधितिः येन सस्तम् अधिदीधितम् = अधिकतेजसम्, प्रचण्डमहसम्। मुनिम् = नारदम्। अभि = लक्ष्यीकृत्य। मुदा हर्षेण। विकासम् = विस्तारम्। उपेयुषी = प्राप्तवती, प्राप्ते। अधिश्रितश्रिणी = अधिश्रिता लब्धा श्री = शोभा याभ्यां ते अधिश्रितश्रिणी = प्राप्तशोभे। विलोचने = नेत्रे। विभ्रत् = धारयन्। सः = श्रीकृष्णः। पुण्डरीकाक्षः = पुण्डरीके इव अक्षिणी यस्य सः पुण्डरीकाक्षः = कमलनेत्रः। सफुटः = स्पष्टः। अभवत् = वभूव।

**कोशः**—निदाध = "निदाघ उष्णोपगमः उष्णः उष्मागमस्तपः"। इत्यमरः

"निदाधो ग्रीष्मकाले स्यात् उष्ण स्वेदाम्बुनोरपि"।इति विश्वः।

धाम = "गृहदेहत्विट् प्रभावाधामानि"। इत्यमरः। "धाम रश्मौ गृहे देहे स्थाने जन्म प्रभावयोः" इति हैमः। "पुण्डरीकं सिताम्भोजम्" इत्यमरः॥

**व्याकरणम्**—दीधितम = दीप्त्यर्थक दाधिङ् धातु सेक्तिच्" प्रत्यय होकर दीधिति बनता है। मुनिम् अभि = यहाँ लक्षणअर्थ द्योत्य रहने पर "अभिभागे" सूत्र से अभि इस अंश की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो जाती है। तत्पश्चात् "कर्मप्रवचनीय युक्ते द्वितीया" सूत्र से कर्म प्रवचनीय संज्ञा के योग में मुनि की द्वितीया विभक्ति हो जाती है। इसी कारण मुनिम् अभि यह प्रयोग हुआ है। मुद्रा = मुद् धातु से "संपदादिभ्यः क्विप्" इस वार्त्तिक से क्विप् प्रत्यय होकर तृतीय के एक वचन में मुदा शब्द बनता है। विकासम् = वि उपसर्ग कस् धातु से भाव में घञ् प्रत्यय होकर विकास, द्वितीया का एकवचन विकासम् सिद्ध होता है। उपेयुषी = उप उपसर्ग गत्यर्थक इण् धातु "छन्दासि लिट्" सूत्र से लिट् लकार आने पर "क्वसुश्च" सूत्र से क्वसु प्रत्यय आने पर उपेयिवस् शब्द बनता है। उपेयिवस् शब्द से नपुंसक लिङ्ग में द्वितीया के द्विवचन में उपेयुषी सिद्ध होता है। विभ्रत् = धारणार्थक भृञ्धातु से शतृ प्रत्यय होकर विभ्रत् बनता है।

**हिन्दी**—सूर्य के समान परम तेजस्वी मुनि नारद को लक्ष्य करके प्रसन्नता से विकसित और सुशोभित नेत्रों वाले श्रीकृष्ण भगवान् पुण्डरीकाक्ष इस सार्थक नाम वाले स्पष्ट रूप से हो गये।

**टिप्पणी**—सूर्य को देखकर कमल खिल जाते हैं उसी प्रकार मुनिनारद रूपी सूर्य को देखकर श्रीकृष्ण के नेत्र-कमल खिल गये और पुण्डरीक नाम कमल का है इसलिए श्रीकृष्ण का पुण्डरीकाक्ष नाम सार्थक हो गया।

**अलङ्कार**—काव्यलिङ्ग—"निदाधधमानमिव" मे उपमा अलंकार है। अतः अंगागिभाव संकर है।

अथ श्रीकृष्णो नारदमवोचदित्याह—

सितं सितिम्ना सुतरांमुनेर्वपुर्विसारिभिः सोधमिवाथ लम्भयन्।

द्विजावलिब्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचभवोचदच्युतः ॥२५॥

**अन्वयः**—अथ अच्युतः विसरिभिः द्विजावलिब्याजनिशाकरांशुभिः सितम् मुनेः वपुः सौधं इव सुतरां सितिम्ना लम्भयन् शुचिस्मितां वाचम् अवोचद्।

**संस्कृत भावार्थः**—अथ श्रीकृष्णः प्रसरणशीलैः दन्तपंक्ति व्याजेन चन्द्रकिरणैः गौरवर्णानारदस्य शरीरं सदनमिव शुभ्रत्वेन प्रापयन् ईषद्धास्ययुक्तां वाणीम् उवाच।

**व्याख्या**—अथ = कृष्णनारदयोरूपवेशनान्तरम्। अच्युतः श्रीकृष्णः। विसारिभिः= विष्वक् सर्वतः सरितुंशीलं येषां ते विसारिणः तैः विसारिभिः= प्रसरणशीलैः। द्विजावलिब्याज निशाकरांशुभिः= द्विर्जायन्ते इति द्विजाः द्विजानाम् अवलिः द्विजावालिः, द्विजावलिः एव ब्याजः यस्यसः द्विजीवालिब्याजनिशाकरांशुभिः= दन्तसमूहछद्मशशिरश्मिभिः। सितम्= धवलम्। मुनेः= नारदस्य। वपुः= शरीरम्। सौधम्= प्रासादम्, राजभवनमित्यर्थः। इव= यथा। सुतरां= अतिशयम्। सितिम्ना = शुभ्रत्वेन, धवर्लस्वेन इत्यर्थः। लम्भयन्= प्रापपन्। शुचिस्मिताम्= शुचिं स्मितं यस्याः सा, ताम् शुचिस्मिताम्= ईषत्हास्ययुक्ताम्। वाचम्= वाणीम्। अवोचत्= उक्तवान्।

**कोशः**—अच्युतः= "पीताम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी विष्वक् सेनो जनार्दनः"। इत्यमरः। द्विजः= दंत्तविप्रांड़जा द्विजा"। इत्यमरः। अवलिः= "वीथ्यालिरावलीः पंक्ति क्षेणी लेखास्तु राजयः"। इत्यमरः। ब्याजः कपटोऽस्त्री ब्याज दम्भोपधयच्छद्मकेतवे"। इत्यमरः। अंशुः= किरणोऽस्त्रमयूखांशुगमस्ति धृणिरश्मयः। इत्यमरः। सितम्= अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्जुनः"। इत्यमरः। वपुः= गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः"। इत्यमरः। सौधम्= सौधोऽस्त्री राजसदनम्"। इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—विसारिभिः= वि उपसर्ग पूर्वक सृ धातु से "बहुलमाभीक्ष्ण्ये" सूत्र से णिनि प्रत्यय जोड़कर विसारिन् शब्द बनता है और तृतीया का बहुवचन विसभराभिः सिद्ध होता है। निशाकरः= निशापूर्वक कृ धातु से " चरेष्ट" सूत्र से ट प्रत्यय होकर निशाकरः बनता है। सितिम्ना= सित शब्द से "वर्णदृढादिभ्य इमनिच्" सूत्र से इमनिच प्रत्यय होने पर सितिमन् रूप सिद्ध होता है, तृतीया का एकवचन सितिम्ना सिद्ध होता है। लम्भयन्= लभ् धातु से शतृ प्रत्यय होकर लभ् + णिच् + शतृ होता है "लभैश्च" से नुमागम होकर अनुस्वार परसवर्ण होने पर लम्भयन् सिद्ध होता है। अर्वोचत्= व्यक्त दचनार्थक ब्रू धातु के लृङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है। लिट् लृट् लृङ् लङ् लकार में ब्रू के स्थान पर वच् आदेश हो जाता है।

**हिन्दी**—इसके बाद (श्रीकृष्ण और नारद जी के बैठ जाने के बाद) भगवान् श्रीकृष्ण ने चारों और फैलती हुई दन्तपंक्ति रूपी चन्द्रमा की किरणों से देवर्षि नारद के स्वाभाविक धवल शरीर को सफेदी किये हुए राज प्रासाद की भाँति अधिक श्वेत बनाते हुए, स्वच्छ मुस्कराहट से युक्त कहना प्रारम्भ किया।

**अलङ्कार (१) उपमा**—"सौधमिव" में शरीर की उपमा सौध से दी गई है।

(२) **अतिशयोक्ति**—"सितिम्नालम्भयन्" में दन्त कान्ति से नारद के शरीर की धवलता की अतिशय वृद्धि बताई गई है। इसलिए यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

(३) **अपह्नुति**—दन्तावलि ब्याज में उपमेय को छिपाकर उपमान को सत्य सिद्ध किया है, अतः अपह्नुति है।

तीनों का परस्पर निरपेक्ष भाव होने के कारण "संसृष्टि" है।

श्रीकृष्णकृतां नारदप्रशंसामाह—

हरत्यधं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीर भाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥२६॥

**अन्वयः**—भवदीयदर्शनम् शरीरभजाम् कालत्रितयेऽपि योग्यतां व्यनक्ति। सम्प्रति अधं हरति। एष्यतः शुभस्यहेतुः पूर्वाचरितैः शुभैः कृतम्।

**संस्कृतभावार्थः**—श्रीकृष्णः कथयति यत् "भवतां दर्शनम् देहधारीणाम् सर्वकाले एव योग्यतां प्रकटयति। इदानीम पापम् नाशयति, भाविनः शुभहेतुः पूर्वकृतैः पुण्यैः लब्धम्। अतः एतादृंश दर्शनं कस्य न प्रार्थ्यम्।

**व्याख्या**—भवदीयदर्शनम् = भवतः इदंभवदीयं, भवदीयं च तद् दर्शनं च भवदीय दर्शनम् = भवतांदर्शनम्। शरीरभाजाम् = शीर्यते इति शरीरम्, शरीरं भजन्ते इति शरीरभाजस्तेषाम् शरीरभाजाम् = शरीरधारिणाम् प्राणिनाम् इत्यर्थः। कालत्रितयेऽपि = त्रयः अववयवाः यस्य तत् त्रितयम्, कालस्य त्रितयम् इतिकालत्रितयम् तस्मिन् कालत्रितये = भूतादित्रितयेऽपि। योग्यताम् = योक्तुम् अर्हः योग्यः योग्यस्यभावः योग्यता ताम् योग्यताम् = अर्हताम्, पवित्रतामित्यर्थः। व्यनक्ति = प्रकाशाति। सम्प्रति = अधुना दर्शनकाले इत्यर्थः। अधम् = पापम्। हरति = अपसारयति, नाशयतिवा,। एष्यतः = भाविनः। शुभस्य = श्रेयसः कल्यणस्मेति। हेतु कारणम्। पूर्वाचरितैः = पूर्वम् आचरितानि पूर्वाचरितानि तैः पूवाचरितैः = कृतैः। शुभैः = पुण्यैः। कृतम् = जातम्।

**कोशः**—अधम् = "कलुवं वृजिनैनोऽधम्" इत्यमरः। सम्प्रति = "एतर्हि सम्प्रदीदानीमधुना साम्प्रतं तथा" इत्यमरः। हेतुः = "हेतुर्ना कारणंबीजम्"। इत्यमरः। "श्वः श्रेयसं शिवं भद्रम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—भवदीय = भवत् शब्द से "भवतष्ठक्छसौ" सूत्र से छ प्रत्यय तथा छ को इय् आदेश होकर भवदीय सिद्ध होता है। शरीर = शॄ धातु से औणादिक ईरन् प्रत्यय होकर शरीर रूप सिद्ध होता है। त्रितय = त्रि शब्द से तयप् प्रत्यय होकर त्रितय बनता है। योग्य = युज् धातु से ण्यत् प्रत्यय होकर योग्य रूप बनता है। एष्यतः = गत्यर्थक इण् धातु से लृट् लकार में शतृ प्रत्यय होकर एष्यत् उससे षष्ठी के एकवचन

में एव्यतः रूप बनता है। चरितम् = चर् धातु से भाव में क्त प्रत्यय "चरितम्" होता है। व्यनक्ति = वि + अञ्ज + लट् + तिप्।

**हिन्दी**—(श्रीकृष्ण भगवान् श्री नारदजी से कहते हैं) हे महर्षि नारद आपका दर्शन शरीरधारियों (मनुष्यों) के लिए तीनों कालों (वर्तमान, भविष्य और भूतकाल) की योग्यता को प्रकट करता है। वर्तमान काल में पापों का नाश करता है, आने वाले कल्याण का कारण है तथा पूर्व किये गये पूण्यों का फल है।

**अलङ्कार**—काव्यलिङ्ग।

इस श्लोक में "हरति", शुभस्य हेतुः तथा "पूर्वाचरितैः कृतम्" इन तीनों वाक्यों का अर्थ शरीर आदि में हेतु है। अतः वाक्यर्थहेतुक काव्यालिङ्ग अलंकार है।

साहित्यदर्पण में काव्यलिङ्ग का लक्षण कहा है—

"हेतोर्वाश्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगव्यते"। इति।

नारदस्य सूर्यादाधिक्यं दर्शयति—

जगत्यपर्याप्त सहस्रभानुना न यन्नियन्तुं समभाविभानुना।
प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतैरदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः ॥२७॥

**अन्वय**—जगति अपर्याप्त सहस्रभानुना भानुना यत् तमः नियुन्तं न समभावि, अनुत्तमम् अदः असंख्यतां गतैः तेजोभिः प्रसहय त्वया नुन्नम्।

**संस्कृतभावार्थ**—लौके अपरिच्छिन्नसहस्रकिरणसूर्येण यत् अज्ञानान्धकारं दूरीकर्तुम् न शेकें, तत् अस्माकं मोहाज्ञानम् अनन्तैः प्रभावैः बलात् भवता निरस्तम्।

**व्याख्या**—जगति = लोके संसारे वा। अपर्याप्तसहस्रभानुना = न पर्याप्ताः अपर्याप्ताः सहस्रं भानवः यस्य अपर्याप्तसहस्रभानुः तेन अपर्याप्तसहस्रभनुना = अपरिच्छिन्नसहस्रकिरणेन। भानुनासूर्येण। यत् तमः = यत् अज्ञानरूपं अन्धकारं। नियन्तुम् = निवारयितुं दूरीकर्त्तुम्। न समभावि = न शेके। अनुत्तमम् = न विद्यते उत्तमं यस्मात् तत् अनुत्तमम् = सर्वोत्तम् सर्वाधिकम् वा। अदः = एतत् (तमः) असंख्यतां गतैः = नविद्यतें संख्या यस्यतत् असंख्यम् तस्यभावः असंख्यता ताम् असंख्यतां गतैः = अनन्तैः। तेजोभिः = ज्ञानमयैः स्वप्रभावैः। प्रसह्य = बलात् त्वया = भवता। नुन्नम् = छिन्नम् निरस्तम्। अतः श्लाघदर्शनीयो भवानितिभावः।

**कोशः**—पर्याप्तम्—"कामं प्रकामं पर्याप्तं निकामेष्टं यथेप्सितम्"। इत्यमरः। भानुः—"भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः"। इत्यमरः। भानवोऽर्वाकरांशवः" इति वैजयन्ती। प्रसह्य = "प्रसह्य क्त हठार्थकम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—पर्याप्त = परि उपसर्ग पूर्वक आप्लृ धातु से क्त प्रत्यय होकर पर्याप्त नञ् समास होने पर अपर्याप्त बनता है। भानुना = भा दीप्तौ धातु से औणादिक नु प्रत्यय होकर भानु शब्द बनता है। प्रसह्य = प्र उपसर्ग पूर्वक मर्षनात्मक सह धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है, किन्तु प्र उपसर्ग पहले रहने से "समासेऽपूर्वेक्त्वोल्यप्" सूत्र से

क्त्वा के स्थान पर ल्यप् होता है तब प्रसह्य बनता है। नियुन्तुम= नि+यम्+तुमुन्। समभावि—सम्+भू+भाव लुङ्+त। नुन्नम्= प्रेरणार्थक नुद् धातु से कर्म में क्त प्रत्यय होता है तब नुद् त यह रूप बनता है। "नुदविद" सूत्र से निष्ठा अर्थात् त को न हो जाता है। परिणमस्वरूप "द" को भी न होकर "नुन्नम्" रूप सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—लोक में अपर्याप्त किरणों वाले सूर्य भी जिस अन्धकार (अज्ञान) को दूर करने में समर्थ नहीं हो सके, उसी अज्ञान रूपी अन्धकार को आपने अपने असंख्य तेजों से जबरन नष्ट कर दिया।

**अलङ्कार**—"व्यतिरेक"

इस श्लोक में नारद के तेज को सूर्य के तेज से अधिक बताया गया है इसलिए व्यतिरेक अलङ्कार है।

नारदस्यश्रुतिनिधित्वं वर्णयति—

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेप निराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसम्पदामिव ॥ २८ ॥

**अन्वयः**—प्रजाक्षेमकृता सुपात्रनिक्षेप निराकुलात्मना प्रजासृजा त्वं धनसम्पदां इव श्रुतीनां सदाउपयोगेऽपि अक्षयः गुरुः निधिः कृतः।

**संस्कृतभावार्थः**—जनकल्याणकारिणा योग्यपुरुष निक्षेप स्वस्थचित्तेन ब्रह्मणा भावानधनसम्पतीनाम् इव श्रुतीनां सदोपयोगेऽपि क्षयरहितः उपदेष्टा महान् निधि विहितः। सम्प्रदायप्रवर्त्तकानां धर्माधर्म व्यवस्थापक तया जगत्प्रतिष्ठाहेतुः भवादृशानां दर्शनम् कस्य न श्लाध्यम् इतिभावः।

**व्याख्या**—प्रजाक्षेमकृतां= प्रजानां क्षेमं प्रजाक्षेमम्, प्रजाक्षेमं कृतवान इति प्रजाक्षेमकृत् तेन प्रजाक्षेम कृता= जनकल्याणकारिणा अन्यत्र सन्ततिकल्याणकारिणा। सुपात्रनिक्षेप निराकुलात्मना= सुपात्रे निक्षेपः सुपात्रनिक्षेपः सुपात्र निक्षेपेन निराकुलः स्वस्थः आत्मा यस्य सः सुपात्र निक्षेपनिराकुलात्मा तेन सुपात्र निक्षेपनिराकुलात्मना= योग्यपुरुष निक्षेपस्वस्थचितेन, अन्यत्र कटाहादिदृढ़ भाजननिधान स्वस्थ चितेन। प्रजासृजा= प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः ताः सृजति इति प्रजासृट् तेन प्रजासृजा= ब्रह्मणा, अन्यत्र पुत्रवता। त्वं= भवान् नारदः। धनसम्पदाम्= धनानां सम्पदः धनसम्पदः तासां धनसम्पदाम्= धनसम्पतीनाम्= इव= यथा। श्रुतिनाम्= श्रूयन्ते धर्माः याभिस्ताः श्रुतयः तासाम् श्रुतीनाम्= वेदानाम्। सदा-सर्वस्मिन् काले। उपयोगेऽपि= उपयुनक्ति इति उपयोगः तस्मिन् उपयोगे= अध्ययनाध्यापनादौ व्ययकृतेऽपि अन्यत्र दानभोगाभ्यां व्यये कृतेऽपि। अक्षयः= न विद्यते क्षयः यस्य सः अक्षयः= नाशरहितः अन्यत्र अनन्तः। गुरुः= उपदेष्टामहान्। निधिः= निधीयते ... निधिः= निक्षेपः= कोषः। कृतः = विहितः।

**कोशः**—"प्रजा स्यात् सन्ततौ जने" इत्यमरः। "योग्यभाजनयोः पात्रम्" इत्यमरः। श्रुतीनाम्—"श्रुति श्रोत्रे तथाम्नाये वार्तायां श्रोत्रकर्मणि" इति विश्वः। "श्रुतिः स्त्री वेद आम्नाय" इत्यमरः। निधिः "निधिर्नाशेत्रधिः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—प्रजा—प्र उपसर्ग पूर्वक जनि प्रादुर्भावे धातु से "ड" प्रत्यय होने पर स्त्रीत्व-दिवक्षा से टाप् होकर प्रजासिद्ध होता है। निक्षेप—नि उपसर्ग पूर्वक क्षिप् धातु से घञ् प्रत्यय होकर निक्षेप बनता है। श्रुतीनाम्—श्रू श्रवणे धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर श्रुतिः बनता है। अक्षयः क्षयार्थक क्षि धातु से अच् प्रत्यय होकर क्षयः नञ् समास होने पर अक्षय सिद्ध होता है। निधिः- नि उपसर्ग पूर्वक "धा धातु से" उपसर्गेधोःकिः" सूत्र से कि प्रत्यय होने पर निधि सिद्ध होता है। कृतः= करणार्थक कृ धातु में "क्त" प्रत्यय होकर कृतः सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—जिस प्रकार पितृ परम्परा (पिता, पितामहादि) अपनी सन्तान के कल्याण के लिए अनन्त धन राशि किसी सुदृढ़ पात्र में रखकर निश्चिन्त हो जाता है उसी प्रकार प्रजापति ब्रह्मा ने आपको (वेद-सम्प्रदाय के लिए) अध्ययन अध्यापन में सदा उपयोग करते रहने पर भी कभी कम नहीं होने वाला वेदों का निधि-कोश बनाकर निश्चन्तता प्राप्त करली है।

**अलङ्कार**—श्लेष

इस श्लोक में शब्द मात्र साधर्म्य होने से शलेष अलंङ्कार है।

श्रीकृष्णः नारदं प्रति मधुरं वक्तुं आरभते।

विलोकने नैव तवामुनामुने। कृतः कृतार्थोऽस्मि निवर्हितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरयसीर्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥२९॥

**अन्वयः**—मुने। निवर्हितांहसा अमुनातव विलोकनेन एव कृतार्थः कृतः अस्मि। तथापि अहं गरीयसीः गिरः शुश्रूषुः अथवा श्रेयसि केन तृप्यते।

**संस्कृतभावार्थः**—हे मुनिश्रेष्ठ। पापविनाशकेन भवतः अनेन दर्शनेनाहं कृतार्थः कृतः तथापि अहं भवतः गौरवान्वितां वाचाम् श्रोतुमिच्छामि।

**व्याख्या**—मुने= हे मुनिश्रेष्ठ नारद। निवर्हितांहसा= निवर्हितं अंहोयेन तत् निवर्हितांहः तेन निवर्हितांहसा= निरस्तपापेन। अमुना= अनेन पवित्रतमेन शुभेन चेतिभावः। तव= भवतः नारदस्येत्यर्थः। विलोकनेन= दर्शनेन। एव= निश्चये। कृतार्थः= कृतः अर्थः येन सः कृतार्थः= कृतकृत्यः। कृतः= विहितः। अस्मि। तथापि= कृतार्थि कृतेऽपीत्यर्थः अहं= श्रीकृष्णः इतिभावः। गरीयसीः= अतिशयेन गुर्व्यः गरीयस्य ताः गरीयसीः= अर्थगुर्वी। गिरः= वाचः। शुश्रूषुः श्रवणेच्छुः। अथवा= तथाहि। श्रेयसि= अतिशयेन प्रशस्यः श्रेयस् तस्मिन् श्रेयसि= कल्याणविषये। केन= केन पुंसा। तृप्यते= सन्तुष्यते। न केनाऽपि तृप्यते इत्यर्थः।

**कोशः**—"श्वः श्रयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलंशुभम्। इत्यमरः। "ब्रह्मीतुभारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—निवर्हितांहसा = नि उपसर्ग पूर्वक हिंसार्थक वर्ह धातु से कर्म में क्त प्रत्यय होकर यह शब्द सिद्ध होता है। विलोकनेन = वि उपसर्ग पूर्वक दर्शनार्थक लोक् धातु से भाव में "ल्युट्" प्रत्यय होकर वि + लोक् + ल्युट् तथा "यु को अन होकर विलोकन। गरीयसीः = गुरु शब्द से "द्विवचन विभज्योपवदे तरवीयसुनौ" सूत्र से ईयसुन् प्रत्यय होकर गरीयस्, स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय गरीयसी बहुवचने गरीयसीः रूप सिद्ध होता है। शुश्रूषु = श्रवणार्थक श्रु धातु से इच्छार्थक सन् प्रत्यय, द्वित्व आदि होकर "ड" प्रत्यय हो जाता है। श्रेयसि = "प्रशस्यस्य श्र" सूत्र से प्रशस्य को श्र आदेश हो जाता है और ईयसुन् प्रत्यय होकर श्रेयस् रूप बनता है। नपुंसक लिङ्ग में सप्तमी विभक्ति के एकवचन में श्रेयसि शब्द बनता है।

**हिन्दी**—(श्रीकृष्ण भगवान् ने देवर्षि नारद से कहा कि) हे देवर्षि नारद। पापों का नाश करने वाले आपके दर्शन से मैं धन्य हो गया हूँ, फिर भी आपकी गौरवपूर्ण वाणी को सुनने का इच्छुक हूँ अथवा कल्याण के विषय में कौन तृप्त हुआ है।

**अलङ्कार**—काव्यलिङ्ग अलंकार।

इस श्लोक में "अथवा श्रेयसि" इत्यादि वाक्यार्थ हैं तो भी इत्यादि वाक्यार्थ का समर्थक होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है। एवं मधुरं उक्त्वा श्रीकृष्णः नारदागमनप्रयोजनं विनयेन पृच्छति—

गतसपृहोऽप्यागमन प्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।
तनोति नस्तामुदितात्म गौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम् ॥३० ॥

**अन्वयः**—गतस्पृह अपि आगमन प्रयोजनं वद हति वक्तुं यया व्यवसीयते उदितात्मगौरवः गुरुः एषः तव आगम एवनः तां धृष्टतां तनोति।

**संस्कृतभावार्थः**—विरक्तोऽपिभवान् अत्रागच्छत् आगमनकारणाम् ब्रूहि, इति वक्तुं मां बाध्यते, गौरवपूर्णः एष तवागमः ममधृष्टतां वर्द्धयति।

**व्याख्या**—गतस्पृहः = गता स्पृहा यस्याऽसौ गतस्पृहः = विगततृष्णः अपि। आगमन प्रयोजनम् = प्रयोजयतीति प्रयोजनं, आगमनस्य प्रयोजनम् आगमन प्रयोजनम् = आगमन कारणाम्। वद = कथय। इति = इत्थम्। वक्तुम् = निगदितुम। यया = धृष्टतया। व्यवसीयते = उधम्यते। उदितात्मगौरवः = गुरोर्भावः गौरवम् आत्मनः गौरवम् आत्मगौरवम्, उदितं आत्मगौरवं येनाऽसौ उदितात्मगौरवः = समुत्पन्न निजमहिमा। गुरुः = महान् श्लाध्यः। एषः = अयम्। तव = भवतः नारदस्य इतिभावः। आगम = आगमनम्। नः = अस्माकम्। धृष्टताम् = धृष्टस्य भावः धृष्टता ताम् धृष्टताम् = आगमनरूपाम्। तनोति = विस्तारयति।

**कोशः**—स्पृहा= "इच्छाकांक्षा स्पृहेहा तृड्वांछा लिप्सा मनोरथः" इत्यमरः। "गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे गुरौ महति दुर्भरे"। इति धरणिः।

**व्याकरणम्**—व्यवसीयते= वि+अव+सि+लिट् त। तनोति-तनु+लट्+तिप्। धृष्टता= धृष्ट+तल "तस्यभावस्त्वलौ" इति।

**हिन्दी**—(श्रीकृष्ण भगवान् नारद जी से विनयपूर्व आने का कारण पूछते हैं) निस्पृह रहते हुए भी आप अपने आने का कारण बताइये? यह कहने के लिए जो धृष्टता मुझे उद्यत कर रही है, मेरी इस धृष्टता को अपना महत्व प्रकट करने वाला आपका यह महत्वपूर्ण आगमन ही चढा रहा है।

**अलङ्कार**—पर्यायोक्ति अलङ्कार

प्रकारान्तर से यहाँ पर्यायोक्ति अलङ्कार है। साहित्यदर्पण में लिखा है "पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते" इति।

नारदस्य श्रीकृष्णं प्रत्युत्तर माह—

इति ब्रुवन्तंतमुवाचस व्रती न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम ! त्वया।
त्वमेव साक्षात्करणी यइत्यतः किमस्ति कार्यं गुरु योगिनामपि ॥३१॥

**अन्वयः**—इति ब्रुवन्तं तम् स व्रती उवाच-पुरुषोत्तम! त्वया इत्थं न वाच्यम्। योगिनामपि त्वम् एव साक्षात्कारणीयः इत्यतः गुरुकार्य किमस्ति।

**संस्कृतभावार्थः**—इत्थ कथयन्तं श्रीकृष्णं नारद अवादीत "हे पुराण पुरुष। भवता इत्थं न कथनीयम्। त्वम् तपस्वीनामपि अगम्यः, अतः परं श्रेष्ठं कार्यम् किमस्ति।

**व्याख्या**= इति=एवम्। ब्रुवन्तम्= कथयन्तम्। तम्= श्रीकृष्णम्। सः= नारदः। व्रती= व्रतमस्यास्तीति व्रती तपस्वी, नारदः इत्यर्थः, उवाच= जगाद। पुरुषोत्तम= पुरिदेहे शेते इति पुरुषः पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः तत्सम्बुद्धो हे पुरुषोत्तम= हे नरोत्तर, हे श्रीकृष्ण इति भावः। त्वया= भवता। इत्थम्= इहक्। न वाच्यम्= न वक्तव्यम्। योगिनामपि= चित्तवृत्तिनिरोधः योगः, योग अस्ति येषां ते योगिनः तेषाम् योगिनाम्= समाहितचेतसाम्, मादृशानामिति भावः। अपि। त्वम् एव= भगवान् एव। साक्षात्करणीयः= प्रव्यक्षीकर्त्तव्यः। इति=अतोहेतोः। अतः= अस्मात् भवद्दर्शनात्। गुरु= महत् कार्यम्= प्रयोजनम्, करणीयम्। किमस्ति= किं विद्यते।

**कोशः**—व्रती= "नियमोव्रतमस्त्रीतच्चोपवासादि पुण्यकम्"। इत्यमरः।

पुरुषोत्तम= "देवकीनन्दनः शौरिः श्रीपतिः पुरुषोत्तमः" इत्यमरः।

गुरु= "गुरुमहत्यङ्गिर से पित्रादौ धर्म देश के। अलघौ दुर्जरेचाऽपि" इति हेमः।

**व्याकरणम्**—ब्रुवन्त्= वचनार्थक ब्रुञ् धातु से शतृ प्रत्यय होकर ब्रुवत् शब्द बनता है। ब्रुवत् शब्द से द्वितीया के एकवचन में ब्रुवन्तम् रूप सिद्ध होता है। व्रती= वरणार्थ वृञ् धातु से उणादि अतच् प्रत्यय होकर व्रतम् बनता है। व्रतम् मे इनि प्रत्यय

होकर व्रतिन् रूप होता है, प्रथमा एकवचन में व्रती बनता है। वाच्यम्-ब्रू धातु से ण्यत् प्रत्यय जोड़कर तथा ब्रू का वचादेश होकर वाच्यम् रूप सिद्ध होता है। योगिनाम्—युज् धातु घञ् प्रत्यय होकर योगः तथा योग शब्द से इनि प्रत्यय होकर योगिन। योगिन् षष्ठी के बहुवचन में योगिनाम् सिद्ध होता है। करणीयः= ब्रू धातु अनीयर प्रत्यय होकर करणीय रूप बनता है। कार्यम्= कर्त्तुम् योग्यं कार्यम्। कृ धातु से ण्यत् प्रत्यय होकर कार्यम् होता है।

**हिन्दी**—इस प्रकार बोलते हुए श्रीकृष्ण भगवान् को तपस्वी नारद जी ने कहा—हे पुरुषोत्तम। आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि योगियों के लिए भी आप दर्शन करने योग्य हैं। इसलिए इससे बड़ा कार्य क्या हो सकता है (अतः आपके दर्शन के लिए मेरा आगमन यहाँ हुआ है)

**टिप्पणी**—संसार के समस्त विषयों से चित्त वृत्ति को हटाकर आत्म-स्वरूप में स्थिर करना योग कहलाता है। योगदर्शन में पतञ्जलि ने कहा है "योगश्चित्त वृत्ति निरोध "तथा" तदा द्रुष्टः स्वरूपेऽवस्थानम्"। उस योग की साधना करने वालों को योगी कहते हैं।

योगिनामपि त्वमेव साक्षात्करणीय इति यदुक्तं तदेव दृढयति
उदीर्णरागप्रतिदोधंक जनैरभीक्ष्णभक्षुण्णतयाऽति दुर्गमम्।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्र भूमिर्निरपाय संश्रया ॥३२॥

**अन्वयः**—उदीर्णरागपतिरोधकम् अभीक्ष्णम् अक्षुण्णतया जनैः अतिदुर्गमम् मोक्षपथं उपेयुषः मनस्चिनः त्वम् निरपायसंश्रया अग्रभूमिः (असि)

**संस्कृतभावार्थः**—मोहरागादिनिवारकम्, निरन्तरमनाभ्यासेन अतिगहनम् गन्तुमशक्यमा मुक्तिमार्गम् प्राप्तुकामस्य महात्मनः पुनर्जन्मरहितं प्राप्यस्थानम् भवानेव।

**व्याख्या**—उदीर्णरागपतिरोधकम्= उदीर्णश्चासौ रागश्च उदीर्णरागः, उदीर्णरागःएव प्रतिरोधकः यस्मिन्नसौ उदीर्णराग प्रतिरोधकस्तम् उदीर्णराग प्रतिरोधकम्= विवृद्धविषयाभिलाष प्रतिबन्धकम्। अन्यत्र कान्तारपक्षे= मोहान्ध चौरादि विरोधिगणाकीर्णम्। अमीक्ष्णम् मुहुमुर्हुः निरन्तरम्। अक्षुण्णतया= न क्षुण्णम् अक्षुण्णम् तस्यभावः अक्षुण्णता तया अक्षुण्णतया = अनभ्यस्तत्वेन अन्यत्र कान्तारपक्षे अपरिचितत्वेन, अप्रतितत्वेन च। जनैः= मुमुक्षुभिः कान्तारपक्षे-पान्थलोकैः। अतिदुर्गमम्= दुःखेन गम्यते इति दुर्गमः अतिशयितो दुर्गमः अतिदुर्गमस्तम् अतिदुर्गम् अतिगहनम्, गन्तुमशक्यम्; कान्तारपक्षे = अति दुस्तरम्। मोक्षपथं = मोक्षस्यपंथा, मोक्षपथस्तम् मोक्षपथम् = मुक्तिमार्गम्। कान्तारपक्षे = कान्तारं वनं वा। उपेयुषः= परिशीलयतः प्राप्तवतश्चमनस्विनः = आत्मचिन्तन परायणस्य।, कान्तारपक्षे= उत्साहवतः त्वमेव= भवानेव। निरपायसंश्रया= निर्गतः अपायः यस्मात् सः निरपायः

निरपाय संश्रयो यस्याः सा निरपायसंश्रया पुनरावृत्ति रहित प्राप्तिः, कान्तारापक्षे—सम्पूर्ण भय वर्जित प्राप्तिः। अग्रभूमिः= अग्राचासौ भूमिः अग्रभूमिः= प्राप्य स्थानम् असीति शेष।

**कोशः**—"प्रतिरोधिपरास्कन्दीपाटच्चर मलिम्लुचाः" ।इत्यमरः। "अग्रमालम्वने प्राप्ये" इति विश्वः।

**व्याकरणम्**—उदीर्ण- उद्+ईर+त ऐसी अवस्था में त को न तथा णत्व होने पर उदीर्ण रूप बनता है। अक्षुण्णतया= क्षुद् धातु से निष्ठा संज्ञा होकर क्त प्रत्यय होता है तब क्षुद्+त इस अवस्था द् के बाद त निष्ठान्त होने से न तथा णल होने पर क्षुण्णं सिद्ध होता है। अति दुर्गमम्= दूर+गम्+खल्। मनस्चिनः= मनस्+विनिः। उपेयुषः= उप उपसर्गपूर्वक इव् धातु से क्वसु प्रत्यय होने पर उपेयिवस् सिद्ध होता है। निरपायसंश्रया= अपाय= अप उपसर्ग पूर्वक इण् गमनार्थक धातु घञ् प्रत्यय जोड़कर अपायः बनता है।

**हिन्दी**—(देवर्षि नारद कहते हैं कि) विषयों में बढ़ा हुआ मोह जिसमें बाधा उत्पन्न करता है तथा जो लोगों से अनभ्यस्त् होने के कारण अत्यन्तदुर्गम है, उस मोक्ष मार्ग को प्राप्त करने वाले मनस्वियों के लिए आप ही प्राप्य स्थान हैं, जहा जाकर लोग फिर नहीं आते हैं।

**पक्षान्तर में**—जिसमें बढ़े हुए सांसारिक राग वाला चौर है तथा जो लोगों द्वारा नहीं आवागमन करने से अत्यन्त दुर्गम है, उस भयङ्कर वन मार्ग को प्राप्त हुए धीर पुरुष के लिए जैसे कोई सुरक्षित स्थान प्राप्त होता है, अर्थात् जैसे चोर डाकुओं से भरे हुए बीहड़ जंगल में जाता हुआ पथिक अपने गन्तव्य भयरहित आश्रम स्थान पर पहुँच कर निश्चिन्त हो जाता है उसी प्रकार अत्यन्त दुर्गम तथा काम, क्रोध आदि बाधाओं से मुक्त मोक्षमार्ग पर चलने वाले "योगियों के लिए आप ही प्राप्य परम पद हैं।

**अलङ्कार**—समासोक्ति अलङ्कार है।

इस श्लोक में श्लेष की व्यञ्जना है। श्रीकृष्ण और मुमुक्षु प्रकृत के साथ चौर आदि से डरे हुए व्यक्ति तथा उसके निर्बाध स्थान प्राप्ति रूप अप्रकृत अर्थ की व्यञ्जना है। इसलिए यहा समासोक्ति अलंकार है। काव्य प्रकाश के अनुसार "परोक्तिभेदकेः श्लिष्टैः समसोक्तिः। इति।

ननुसांख्यशास्त्रोक्तपुरुषसाक्षात्कारन्मोक्षोनाऽस्मत्साक्षात्कारदित्याशंकाह—

उदातिसारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशाकथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतिः पृथग्विदु पुरातंन त्वां पुरुषं पुराविदः ॥३३॥

**अन्वयः**—पुराविदः त्वां निगुहीतमानसैः अध्यात्मदृशा कथञ्चन गृहीतम् उदातिसारं बहिर्विकार प्रकृतेः पृथक् पुरातनं पुरुषं विदुः॥

**संस्कृतभावार्थः**—पूर्वज्ञैः निग्रहेन्द्रियैः कपिलादिभिः योगिभिः महाप्रयत्नेन साक्षात्कृतम् त्वाम् उदासीनं, प्रकृतिविकाररहितं, मूलप्रकृतेः भिन्नं, सनातनं, पुरुषं, विदन्ति।

**व्याख्या**—पुराविदः= पुरा विदन्ति जानन्ति ये ते पुराविदः= पुराणतत्त्वविदः कपिलादयः मुनयः। त्वां= भवन्तं श्रीकृष्णमित्यर्थः। निगृहीतमानसैः= निगृहीतं मानसं यैस्ते निगृहीतमानसास्तैः निगृहीतमानसैः= वशीकृतचित्तैः योगिभिः इत्यर्थः। अध्यात्मदृशा= आत्मनि अधि इति अध्यात्मम् अध्यात्मम् या दृक् अध्यात्मदृक् तया अध्यात्मदृशा= अन्तर्दृशा, ज्ञानदृशा। कथञ्चन= महाप्रयासेन। गृहीतम्= प्रत्यक्षीकृतम्, साक्षात्कृतम्। उदातिसारम्= उदासीनम्, तटस्थम्, प्रकृतौ स्वार्थप्रवृतायामपि स्वयं तद्भिन्नत्वादस्पष्टमित्यर्थः। बहिर्विकारम्= विकारेभ्यो: बहिरिति बहिर्विकारम्= महदादि प्रकृति विकारभिन्नम्। प्रकृतेः= प्रकुरुते इति प्रकृतिस्तस्याः प्रकृतेः, प्रधानात्, त्रिगुणात्मकायाः कारणरूपायाः मूल प्रकृतेः। पृथक= भिन्नम्। पुरातनं= पुराभवः पुरातनस्तं पुरातनं= पुराणम्, सनातनम्। पुरुषम्= पुरुषपदवाच्यम्। विदुः= जानन्ति। तथा सांख्यरिकायाम् —

"मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या प्रकृति विकृतयः सदा।

षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥

**कोशः**—मानसम्= "चित्तंतु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः।" इत्यमरः। प्रकृतिः= प्रकृतिः पञ्चभूतेषु प्रधाने मूलकारणे" इति यादव। पुरुषः = "क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुष"। इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—पुराविदः= पुरा उपपद पूर्वक विद् धातु से क्विप् होकर पुराविद् प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में पुराविद शब्द बनता है। मल्लिनाथ ने पुराविद् का अर्थ "कपिल" आदि किया है। मल्लिनाथ का अर्थ उचित प्रतीत होता है। इस श्लोक में सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है और सांख्याशास्त्र के प्रवर्त्तक आचार्य महर्षि कपिल ही माने जाते हैं। प्रकृति, पुरुष का विवेचन सांख्या शास्त्र का विषय है। पुरातनम्= पुराशब्दात् "सायंचिरम्"सूत्र से ट्यु प्रत्यय "युवोरना की" सूत्र से यु को अनादेश हो जाता है।

गृहीतम्= गृह् धातु से क्त प्रत्यय तथा इडागम होकर सम्प्रसारण हो जाने पर गृहीतम् रूप सिद्ध होता है। विदुः= विद् धातु + लट् लकार "झि" प्रत्यय के बाद "विदो लटोवा" इससे"झि" को उस् आदेश हो जाने पर विदुः रूप सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—पूर्वकालिक (प्राचीन) जो पुरानी बातों को जानते हैं (कपिल आदि आचार्य) आपको, मन को नियन्त्रित करने वाले योगियों द्वारा अन्तर्दृष्टि से किसी तरह प्रत्यक्ष किया हुआ, क्रियाशून्य, सभी विकारों से बाहर और त्रिगुणात्मक प्रकृति से भिन्न अनादि पुरुष जानते हैं।

**टिप्पणी**—माघ कवि ने इस श्लोक में सांख्य दर्शन का सम्पूर्ण रहस्य भर दिया है। यहा "पुराविदः" शब्द मुख्यतया सांख्य दर्शन के प्रवर्त्तक कपिल के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैसा कि श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है—"ऋषिं प्रसूतं कपिल यस्तभग्रे ज्ञानैर्विभर्त्ति जायमानं च पश्येतू"। इति

सांख्य दर्शन में चार पदार्थ माने गये हैं।

(१) प्रकृति (२) प्रकृति-विकृति (३) विकृति (४) पुरुष।

(१) प्रकृति—सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों की साम्यवस्था का नाम ही प्रकृति है। यह नित्य है। इससे महान् तत्व (बुद्धि) की उत्पत्ति होती है। प्रकृति कारण है, कार्य नहीं।

(२) प्रकृति-विकृति—बुद्धि, अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्राएँ (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द) ये सात पदार्थ प्रकृति तथा विकृति उभयात्मक है, अर्थात् कारण भी और कार्य भी। बुद्धि तत्व प्रकृतिं से उत्पन्न होता है इसलिए यह प्रकृति का कार्य है। बुद्धि से अहंकार उत्पन्न होता है इसलिए वह बुद्धि का कार्य है। अहंकार एकादश इन्दियों और पञ्चतन्मात्राओं को उत्पन्न करता है। अतः वह कार्य भी है और कारण भी है। पञ्चतन्मात्राओं से क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश उत्पन्न होते हैं, अतः ये भी कार्य और कारण दोनों हैं।

(३) विकृति—पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) तथा एकादश इन्दियाँ (पाँच ज्ञानेन्दियाँ + पाँच कर्मेनिद्रयाँ + एक मन) में सौलह तत्व केवल विकृति अर्थात् केवल कार्य हैं कारण किसी के नहीं है क्योंकि ये अहंकार से उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न किसी को नहीं करते।

(४) पुरुष—यह न प्रकृति है और न विकृति तथा उभयात्मक भी नहीं है। वह तो इन सबसे विलक्षण नित्य शुद्ध बुद्ध चेतन उदाहीन है। सांख्यकारिका में कहा है "पुरुषतो" पद्मपत्रमिवाम्भसा" इति।

**विशेष**—इस श्लोक में महाकवि माघ ने अपने दार्शनिक ज्ञान का परिचय दिया है। माघ कवि को सांख्यदर्शन का ज्ञान पूर्णरूपेण था, इसका परिचय इस श्लोक से मिलता है। सांख्यदर्शन के अनुसार पुरुष एवं प्रकृति में दो प्रधान तत्व हैं। इनमें प्रकृति अविकृत है। क्योंकि प्रकृति से अन्य तत्व उत्पन्न होते हैं। प्रकृति किसी से उत्पन्न नहीं होती।

भगवनः श्रीकृष्णस्य सांख्यदर्शनेन उदासीनत्वम् निर्गुणत्वं च प्रतिपाद्य सम्प्रति प्रकृतोपयोगितया पाञ्चरात्रदर्शनेन सगुणत्वं कर्तृत्वं चाश्रित्य षड्भिः श्लोकैः स्तौति। प्रथमं वराहरूपेण तस्य धरोद्धरणमाह—

निवेशयामासिथहेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः।

जगत्त्रयेकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्र्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम् ॥३४॥

**अन्वयः**—जगत्त्रेयेकस्थपतिः त्वं हेलया उद्धृतं फणाभृताम् ओकसः एकं छादनं भूतलं उच्चकैः अहीश्वरस्तम्भ शिरः सु निवेशयामासिथ।

**संस्कृतभावार्थः**—त्रैलोक्यधिपतिः भवान् वराहवतारे वसुन्धरां लीलया उथाप्य शेषफणरूपस्तम्भाग्रभागेषु शेषफणसहस्त्रेषु नियोजितवनास्ति।

**व्याख्या**—जगत्त्रेयेकस्थपतिः= त्रयः अवयवाः यस्य तत् त्रयम् जगतां त्रयमिति जगत्त्रयम् एकश्चासौ स्थपतिश्च एकस्थपतिः जगत्त्रयस्य एकस्थपतिः जगत्त्रपयेकस्थपतिः= त्रैलोक्याधिपतिः पक्षान्तरे- त्रिभुवनैकशिल्पी। त्वम्= भवान् (श्रीकृष्ण) हेलया= लीलया अप्रयासेन वा। उद्धृतम्= उत्थापितम्, वराहवतारे समुद्रधृतम्। क्वचिद् हेलयोद्धृतमिति पाठान्तरम् तत्र उद्धृतमित्यता चलितमित्यर्थः भूतलमित्यस्य विशेषणमिदम्। फणाभृताम्= फणाः विभ्रतीतितेषां फणामृताम् सर्पाणाम्। ओकसः = आश्रयस्य पातालरूपस्य, पक्षान्तरे-गृहस्य। एकम्= मुख्यम् अद्वितीयम्। छादनं= आवरणम्। भूतलम्= पृथिवीतलम्, भूवलयम्। उच्चकैः उन्नतेषु। अहीश्वरस्तम्भशिरः सु= अहीनाम् ईश्वरः अहीश्वरः अहीश्वर एव स्तम्भः तस्य शिरांसि, तेषु अहीश्वरस्तम्भ शिरः सुं= शेष फणासहस्त्रेषु पक्षान्तरे नागाधिपति शेष शिरोरूप स्तम्भाग्र भागेषु। निवेशयाभासिथ= नियोजित तवानसि, स्थापयामासिथ।

**कोशः**—स्थपपतिः= "स्थपतिश्चाधिपे तीक्ष्णे वृहस्पति सचिवयोः"। इति वैजयन्ती। ओकसः "ओकः सद्मनि चाश्रये"। इति विश्वः। अहीश्वरस्तम्भशिरःसु अहिं= "सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजंगाऽहि र्भुजङ्गम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—हेलया= हिल् धातु से धञ् प्रत्ययान्त हेला शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है। तृतीया के एकवचन मे हेलया प्रयुक्त हुआ है। उद्धृतम्= उत् उपसर्ग पूर्वक धृ धातु से कर्म में क्त प्रत्यय होकर उद्धृतम् बना है। छादनम्= अपवारणर्थकणिजन्त छद् धातु से करण में ल्युट् प्रत्यय होने पर "यु" का अनादेश हो जाता है तब छादनम् सिद्ध होता है। फणाभृताम्= फणापूर्वक भृ धातु से "क्विप्" प्रत्यय तथा तुक् का आगम होकर फणाभृत और षष्ठी के बहुवचन में फणाभृताम् बनता है। निवेशयामासिथ= नि पूर्वक णिजन्त विश् धातु से लिट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन (थल्) प्रत्यय का रूप निवेशयामासिथ।

**हिन्दी**—तीनों लोकों के एक मात्र निर्माता (शिल्पी) तथा स्वामी आप ने वराहवतार धारण करके विनाप्रयास के ही उठाये गये सर्पों के गृह (पाताल लोक) के एक मात्र छादन (छप्पर आदि) इस भूतल को खम्भे के समान ऊंचे उठे हुए शेषनाग के फणों पर स्थापित कर दिया था।

जिस प्रकार कोई बढ़ई या कारीगर मकान के आवरण (छप्पर या टीन आदि) को आसानी से उठाकर ऊंचे खम्भों पर रख देता है, उसी प्रकार त्रैलोक्य के स्वामी आपने वराहवतार, धारण करके बिना प्रयास के पाताल लोक छप्पर इस पृथिवी को शेषनाग के सिरों के ऊपर रख दिया था।

**टिप्पणी**—पौराणिक कथा के अनुसार जब हिरण्याक्ष नाम के दैत्य ने अपने बल के गर्व में चूर होकर इस धरा को समुद्र के भीतर गहराई तक पहुँचा दिया तो भगवान् विष्णु ने वराहवतार लेकर समुद्र में भीतर धँसती हुई पृथिवी को अपने दाँतों पर रोक कर उस दैत्य को मार डाला था और धरती को शेषनाग के फणों पर स्थापित किया था।

**अलङ्कार**—शिलष्ट परम्परित रूपक अलङ्कार।

इस श्लोक में पृथिवी पर छादन (छत) का आरोप किया गया है तथा पाताल को घर के रूप में, शेषनाग के फणों को स्तम्भ के रूप में बताया गया है। भगवान् विष्णु पर कुशल शिल्पी का आरोपण है। इसलिए यहाँ शिलष्ट परम्परितरूपक अलंकार है। साहित्य दर्पण में लिखा है—"यत्र कस्यचिदारोपः परारोपणकरणम्। तत्परम्परितं शिलटाशिलष्टाशब्द निबन्धनम्" इति।

श्रीकृष्णस्य अपूर्व महिमानं दर्शयति—

"अनन्यगुर्वास्तव केन केवलः पुराणमूर्त्तेर्महिमावगम्यते।
मनुष्यजन्माऽपि सुराऽसुरान् गुणैः भावान्भवच्छेद करैः करोत्मधः ॥३५॥

**अन्वयः**—अनन्यगुर्वाः तव पुराणमूर्तेः केवलः महिमाकेन अवगम्यते। मनुष्य जन्माऽपि भवान् भवच्छेदकरैः गुणैः सुराऽसुरान् अधः करोति।

**संस्कृतभावार्थः**—हे कृष्ण! सर्वोत्मायाः भवतः पुरातनस्वरूपस्य सम्पूर्णः महिमा कः जानति। मानवरूपधारी अपि भवान् भवबन्धनविनाशकैः गुणैः सर्वान् देवासुरान् तिरस्करोति।

**व्याख्या**—अनन्यगुर्वाः= न विद्यते अन्यः गुरुः यस्याः सा अनन्यगुर्वी तस्याः अनन्यगुर्वाः= सर्वोत्तमायाः। तब= भवतः। पुराणमूर्त्ते= पुराणश्र्चासौ मूर्त्तिश्च, पूराणमूर्त्तिस्तस्याः पुराणमूर्त्तेः= पुरातन शरीरस्य सनातनवयुषः। केवलः= सम्पूर्णः अशेषःवा। महिमा= सामर्थ्यम्, माहात्म्यम्। केन= पुरुषेण, अन्यव्यक्तिना। अवगम्यते= ज्ञायते। मनुष्य जन्माऽपि= मनुष्यात्जन्म यस्य सः मनुष्यजन्मा= मानवदेहधारी आदि। भवान्= त्वम्। भवच्छेदकरैः= भवस्य छेदः भवच्छेदः, भवच्छेदं कुर्वान्तीति भवच्छेदकराः तैः भवच्छेद करैः= संसारबन्धनकर्त्तन करैः। गुणैः= ज्ञानैश्वर्यादिभिः दयादाक्षिण्यादिभिश्च गुणैः। सुराऽसुरान्= सुराश्र्च असुराश्र्च सुरासुरा स्तान् सुराऽसुरान्= देवराक्षसान्। अधः करोतिः तिरस्करोति।

**कोशः**—केवलः = "केवलः कृत्स्नः एकः स्यात्केवलश्चावधारणे।" इति विश्वः। "निर्णीते केवलमिति त्रिलिङ्गत्वेक कृत्स्नयोः" इत्यमरः॥

**व्याकरणम्**—महिमा महत् शब्द से इमानिच् प्रत्यय करने पर महिमन् शब्द बनता है। महिमन् शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में महिमा शब्द बनता है। भवच्छेद करैः = भव + छेद पूर्वक "कृ" धातु से "ट" प्रत्यय होने से करः तथा तृतीया विभक्ति के बहुवचन में भवच्छेदकरैः बनता है। अवगम्यते = अव + गम् + लट् + त + यक्।

**हिन्दी**—सबसे श्रेष्ठ, दिव्य देह वाले आपकी सम्पूर्ण महिमा किस के द्वारा जानी जा सकती है? अर्थात् कोई नहीं जान सकता। मनुष्य जन्म लेकर भी आप सांसारिक (जन्म-मृत्यु आदि) बन्धनों को काटने वाले अपने गुणों से दैव तथा दैत्यों को तरिस्कृत कर रहे हैं।

**अलङ्कार**—छेकानुपास।

श्लोक के उत्तरार्ध में "सुरा सुरा" 'भव भव' करैः करौ आदि व्यञ्जनों की आवृत्ति से छेकानुप्रास है। साहित्यदर्पण में लक्षण कहा है" छेको व्यञ्जनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा"।

श्रीकृष्णस्य भूभारापहारकत्वमाह—

"लघुकरिष्यन्नति भरभंगुराम् अमूंकिलत्वं त्रिदिवादवातरः।
उदूढ़लोकत्रितयेन साम्प्रतं गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया॥३६।

**अन्वयः**—त्वम् अतिभारभङ्गुराम् अमूं लघुकरिष्यन् त्रिदिवात् अवातरः किल। साम्प्रतम् उद्ढ़लोकत्रितयेन त्वया धरित्री गुरुः क्रियतेतराम्॥

**संस्कृतभावार्थः**—वस्तुतः पापभारातिशयेन छिन्नभिन्नं भूतलं निर्भारं कर्तुम् स्वर्गात् अत्र अवतीर्णः असित्वम्, किन्तु त्रैलौक्यधारितेन त्वया इयं धरित्री पूज्या क्रियते।

**व्याख्या**—त्वम् = भवान्। अति भारभङ्गुराम् अतिशयितो भारः अतिभारस्तेन भङ्गुरा अतिभारभङ्गुरा ताम् अतिभारभङ्गुराम् = भारातिशयेन भज्यमानाम्, अतिभारेण स्वयमेव भज्यमानाम्। अमूं = पृथिवीम्। लघूकरियन् = भाररहितां करिष्यन्। त्रिदिवात् = तृतीयाद्यौः त्रिदिवस्तस्मात् त्रिदिवात् = स्वर्गात्। अवातरः अवतीर्णोसि। साम्प्रतम् = इदानीम्। उदूढ़लोकत्रितयेन = लोकानाम् त्रितयमिति लोकत्रितयम्, उदूढं लोकत्रिययं येन सः तेन उदूढ़लोकत्रितयेन = धृतभुवनत्रयेण। त्वया = भवता श्रीकृष्णेन इत्यर्थः। धरित्री = वसुधा। गुरुः भाराक्रान्ता, पूज्या च। क्रियतेतराम् = अतिशयेन विधीयते।

**कोशः**—त्रिदिवः- "स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशलयाः"। इत्यमरः।

धरित्री—"धरा धरित्री धरणी क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः"। इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—अतिभारभङ्गुराम् = 'भञ्ज, धातु से उणादि सूत्र "भञ्ज्ञासभिदोघुरच्" से घुरच् प्रत्यय होकर तथा स्त्रीत्व की विवक्षा मे टाप् होकर भंगुरा तथा द्वितीया के एकवचन में भंगुराम् बनता है। लघुकरिष्यन् = लघु शब्द से कृ धातु के योग में "कृम्वास्ति" सूत्र से अभूततद्भावे च्वि प्रत्यय तथा "च्वौच" सूत्र से लघु के उ कार को दीर्घ हो जाता है तब लघू + कृ इस स्थिति में लृट् + शतृ होकर लघूकरिष्यन् शब्द सिद्ध होता है। त्रिदिवः = त्रि + दिव् + घञ्। उदूढ़ = उत् उपसर्गपूर्वक वह् धातु से क्त प्रत्यय सम्प्रसारण उदुह + त त कोध ढत्वपुनः "हो ढ" से ह को ढ तथा ढ लोप होने पर "ढ्रलोचे" से दीर्घा उदूढ़ सिद्ध होता है। अनतंरः = अव + तृ + लङ्-सिप्।

**हिन्दी**—आप दुष्टों के भार से व्यथित इस पृथिवी का भार कम करने के लिए स्वर्ग से अवतरित हुए हैं, किन्तु इस समय तीनों लोकों को अपने उदर में धारण करने वाले आप इस धरती को गुरु (भारी या पूज्य) बना रहे हैं।

**अलङ्कार**—विरोधाभास अलङ्कार है।

इस श्लोक में जो पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतरित हुए वे ही अपने भार से इस पृथिवी को और भी भारी बना रहे हैं, यह कैसे हो सकता है। यह विरोध प्रतीत हो रहा है। अतः हे भगवन् आप अवतार लेकर इस पृथ्वी को गौरवशाली बना रहे हैं, यह अर्थ करने पर विरोध का परिहार हो जाता है। इसलिए यहाँ विरोधाभास अलंकार हैं। काव्य प्रकाश में लक्षण कहा है—

"विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः। इति।

श्रीकृष्णस्य महीतलावतीर्णत्वेन दर्शनविषयत्वं दर्शयति—

निजौजसोज्जासयितुं जगद् द्रुहाभुपाजिहीथा न महीतलं यदि।
समाहितैप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशः स्याः कथमीश मादृशाम्।।३७।।

**अन्वयः**—निजौजसा जगद्द्रुहाम् उज्जासयितुं महीतलं न उपाजिहीथाः यदि ततः समाहितैः अपि अनिरूपितः त्वम् ईश। मादृशाम् दृशः पदं कथंस्याः।

**संस्कृतभावार्थः**—हे भगवन्। स्वतेजसा दुष्टान् नाशयितुं पृथिवीतलं नावतरेः चेत् तर्हि योगिभिरगम्यं त्वं मत्सदृशानां दृष्टिपथे कथं भवेः।

**व्याख्या**—निजौजसा = निजस्य ओजः निजौजस्तेन निजौजसा = स्वतेजसा। जगद्द्रुहाम् = जगद्भ्यः द्रुहयन्ति इति जगद्द्रुहः तेषाम् जगद्द्रुहाम् = जगद्विद्वेषिणाम् कंसादीनाम् इत्यर्थः। उज्जासयितुम् = विनाशयितुम्, मारयियतुम्। महीतलम् = महयास्तलम् महीतलम् = भूमण्डलम्। न उपाजिहीथाः = न अवतरेः। यदि = चेत्। ततः = तर्हि। समाहितैः = समाहितचित्तैः, समाधिनिष्ठैः योगिभिः इत्यर्थः। अपि। अनिरूपितः = न निरूपितः अनिरूपितः = अनवलोकितः, अगृहीतः। त्वं = भवान्। ईश = हे भगवन्। मादृशाम् = अहमिव पश्यन्ति ये ते मादृशाः तेषाम् मादृशाम् =

मत्सदृशानां चर्मचक्षुणाम् इत्यर्थः। दृशाः= दृष्टेः पदम्= स्थानम्। कथम्= केन प्रकारेण। स्याः= भवेः। न कदाचिदपीत्यर्थः।

**कोशः**—ओजः= "ओजो दीप्तावववष्टम्भे प्रकाशवलयोरपि"। इति मेदिनी। "ओजा दीप्तौ बले" इत्यमरः। यदि= "पक्षान्तरे चेद् यदि। इत्यमरः। अपि= "अपि समुच्चयप्रश्नशंकास्वपि"। इत्यमरः। पदम्= "पदं व्यवसित त्राण स्थान लक्ष्माङ्घ्रि वस्तुषु" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—जगदद्रुहाम्= जगत् उपपद पूर्वक द्रुह धातु से "सत्सूद्विष सूत्र से क्विप् प्रत्यय होकर जगद्द्रुहः षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में जगद्द्रुहाम् बनता है। यहाँ "जासिनिप्रहण्" सूत्र से कर्म में षष्ठी विभक्ति हो गई है। उज्जासयितुम्= उत् उपसर्ग पूर्वक ताड़नार्थक बिजन्त जस् धातु से तुमुन् प्रत्यय होकर उज्जसयितुम् शब्द बना है। उपाजिहीथाः= गत्यर्थक ओहाङ् धातु से आत्मनेपद में लड् लकार मध्यम पुरुष एकवचन थास प्रत्यय का रूप होगा उपाजिहीथाः। समाहितैः सम् आङ् उपसर्ग पूर्वक 'धा' धातु से क्त प्रत्यय होने पर समाहित रूप बनता है।

निरूपितः= नि उपसर्ग पूर्वक रुप् धातु से कर्म में क्त प्रत्यय तथा इडागम होकर निरुपितः सिद्ध होता है

**हिन्दी**—यदि आप अपने तेज से संसार से द्वेष रखने वाले दुष्टों (कंसादि) को मारने के लिए इस पृथिवी पर अवतार नहीं लेते तो हे भगवन्। योगियों से भी अगम्य आप मुझ जैसे चर्मचक्षु लोगों के दृष्टि गोचर कैसे होते?

श्रीकृष्णस्य जगत्पालनसामर्थ्यमाह—

उपप्लुतं पातुभदो मदोद्धतैस्त्वमेव विश्वम्भर। विश्वमीशिषे।
ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः॥३८॥

**अन्वयः**—विश्वम्भर! मदोद्धतैः उपप्लुतं अदः विश्वम् पातुं त्वमेव ईशिषे। क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः क्षालयितुं रवेः ऋते कः क्षमेत?

**संस्कृतभावार्थः**—हे विश्वम्भर! दुष्टैः पीडितं विश्वं पातुं त्वमेव समर्थोऽसि निशान्धकारमलिनं आकाशं प्रकाशयितुं सूर्यात् विना कः शक्नुयात्।

**व्याख्या**—विश्वम्भर= विश्वं भरतीति विश्वम्भरः तत्सम्बुद्धो हे विश्वम्भर, हे त्रैलोक्यपालक। मदोद्धतैः= मदेन उद्धताः मदोद्धतास्तैः मदोद्धतैः= गर्ववृद्धैः, दर्पयुक्तैः (कंसादिभिः असुरैः)। उपप्लुतम्= पीड़ितम्। अदः= एतत्। विश्वम्= जगत् लोकं वा। पातुं= त्रातुं, रक्षितुमित्यर्थः। त्वमेव= भवानेव। ईशिषे= समर्थोऽसि। क्षपातमस्काण्डमलीमसम्= तमसः काण्डानि तमस्काण्डनि क्षपयास्तमस्काण्डानि क्षपातमस्काण्डानि तैः मलीमसं तत् क्षपातमस्काण्डमलीमंस= निशान्धकार समूह मलिनम्। नभः= + आकाशम्। क्षालयितुम् = निर्मलीकर्त्तुम। प्रकाशमितुम् इत्यर्थ।

रवेः= दिनकरात् सूर्यात्। ऋते= विना। कः= कःपुरुषो देवोवा। क्षमेत= समर्थोभवेत्।

**कोशः**—विश्वम्भरः= "विश्वम्भरः कैटभजिद्विधुः श्रीवत्सलाञ्छनः"। इत्यमरः। क्षपा= "निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामाक्षणदाक्षपाः"। इत्यमरः। तमस्= "अन्धकारो स्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः।"। इत्यमरः। काण्डः= "काण्डोऽस्त्रीदण्ड बाणर्ववर्गावसरवारिषु"। इत्यमरः।

मदः= "दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भश्चित्तोद्रेकः स्मयो मदः"इत्यमरः। मलीमसम्= "मलीमसंतु मलिनं कच्चरं मालदूषितम्।" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—विश्वम्भर= विश्वपूर्वक भरणार्थक भृञ् धातु से "संज्ञा या भृतवृत्ति" सूत्र से खच् प्रत्यय तथा "अरुर्द्विषद्" सूत्र मुमागम होकर विश्वम्भर सम्बोधन के एकवचन में बनता है। उपप्लुतम्= उप उपसर्ग पूर्वक गत्यर्थक प्लुङ् धातु से क्त प्रत्यय होकर उपप्लुतम् होता है। पातुम्= "पा" धातु तुमुन प्रत्यय। ईशिषे= ईश् धातु से आत्मनेपद लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन थास् प्रत्ययं "थासः से" थास् के स्थान पर से आदेश होकर ईशिषे सिद्ध होता है। क्षपा-क्षपयति इति क्षपा अच् प्रत्यय स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् क्षपा। रवेः ऋते= "अन्यारादितरर्ते" इस सूत्र से ऋते के योग में पंचमी विभक्ति होती है।

**हिन्दी**—हे विश्वपालक। गर्व से उद्दण्ड, कंसादिदुष्टों से पीड़ित इस संसार की रक्षा करने में आप ही समर्थ हैं। रात्रि के अन्धकार के समूह से मलिन आकाश को सूर्य के अतिरिक्त कौन स्वच्छ करने में समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

**अलङ्कार**—"प्रतिवस्तूपमा" अलङ्कार।

इस श्लोक में एक ही साधारण धर्म का भिन्न-भिन्न दो वाक्यों में दो प्रकार से (ईशिषे क्षमेत) प्रयोग किये गये हैं। साहित्यदर्पण में लक्षण बताया गया है—"प्रतिवस्तूपमा सास्यांद् वाक्ययोर्गम्य साम्ययोः। एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक" ॥इति॥

श्रीकृष्णस्य कंसादितुच्छ दानवमारणास्तवनं निन्दैवेति गदति—

करोति कंसादिमही भृतां वधाज्जनो मृगाणमिव यन्तव स्तवम्।
हरे। हिरण्याक्षपुरः सरासुरद्विपद्विषः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया ॥३९॥

**अन्वयः**—जनः मृगाणाम् इव कंसादिमहीभृताम् वधात् यत् तव स्तवं करोति, हरे सा हिरण्याक्षपुरः सरासुरद्विपद्विषः तब प्रत्युततिरस्क्रिया।(भवति)

**संस्कृतभावार्थः**—लोकः हरिणानाम् इव कंसादिराज्ञां मारणात् भवतः स्तुतिम् करोति। हे कृष्ण। हिरण्याक्षादि दैत्यहस्तिनाशकस्य भवतः तिरस्कार एव भवति।

**व्याख्या**—जनः= लोकः। मृगाणाम्= क्षुद्रपशूनाम्। इव= यथा। कंसादिमही भृताम्= महीं विभ्रतीति महीभृत् कंसादिर्येषां ते कंसादयः कंसादयश्च ते महीभृतश्च

कंसादिमहीभृतः तेषां कंसादिमहीभृताम् = कंसादि नृपाणाम्। वधात् = मारणात्, हननात्। यत्। तवः भवतः, श्रीकृष्णस्येत्यर्थः। स्तवं = स्तुतिम्। करोति = रचयिता, विदधाति। हरे! हे कृष्ण! हे सिंह इति च गम्यते॥ सा = स्तुतिः। हिरण्याक्षपुरः सर सुरद्विपद्विषः = पुरः सरतीति पुरः सरः, द्वाभ्यां मुखशुण्डाम्यां पिवन्तीति द्विपाः, हिरण्याक्ष एव पुरः सरोयेषां ते हिरण्याक्षपुरः सराः ते च ते असुराश्च हिरण्याक्षपुरः सरासुराः ते एव द्विपाः हिरण्याक्षपुरः सरासुरद्विपाः तान् द्वेष्टि इति हिरण्याक्षपुरः सरासुर द्विपद्विट् तस्य हिरण्याक्षपुरः सरासुरद्विपद्विषः = हिरण्याक्षदिदैत्यगजरिपोः। तव = भवतः। प्रत्युत = अपितु वैपरीत्येन। तिरस्क्रिया = अपमानः, निन्दा इत्यर्थः। भवतीतिशेषः।

उन्क्तम् च—

"मृगारिंवा मृगेन्द्रं वा द्वयं ब्याहरातां सताम्।
तस्यद्वयमपि ब्रीड़ा क्रीड़ादलित दन्तिनः" ॥ इति।

**कोशः**—"यमानिलेन्द्रचन्द्रार्क विष्णुसिंहाशुवाजिषु। शुकाहिंकपिभेकेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु"। इत्यमरः। प्रत्युत = "प्रत्युतेत्युक्तवैपरीत्ये"। इति गण व्याख्या। स्तवं = स्तवं स्तोत्रं स्तुतिर्नुतिः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—महीभृतः मही पूर्वक भृ धातु से क्विप् फिर तुकागम करके महीभृत रूप बनता है जो षष्ठी के बहुवचन मे महीभृताम् रूप बनता है। वधात् = हिंसार्थक हन् धातु से "हनोवधच" सूत्र से अप् प्रत्यय तथा हन् के स्थान वध आदेश होकर वध रूप बना जो पंचमी एकवचन में वधात् सिद्ध होता है। स्तवम् = स्तुत्यर्थक "ष्टुम्" धातु से "ऋदोरप्" सूत्र से अप् प्रत्यय स्तु + अ इस अवस्था में गुणादेश होकर स्तवः रूप सिद्ध होता है। तिरस्क्रिया = तिर पूर्वक कृ धातु से "कृञ् + शच" सूत्र से शः के स्थान पर यक् प्रत्यय होने पर तिरस्क्रिय बनता है स्त्रीत्वे विवक्षा टाप् से तिरस्क्रिया रूप सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—आपके द्वारा क्षुद्र पशुओं की भाँति कंसादि दुष्टों के वध करने से जो लोग आपकी स्तुति (प्रशंसा) करते हैं। हे हरे! पक्षान्तर में हे सिंह! वह प्रशंसा तो हिरण्याक्ष आदि दानवों रूपी हाथियों को मारने वाले आपका अपमान ही है।

**टिप्पणी**—हे प्रभो! जो सिंह, हाथियों को मार देता है, यदि वह मृग को मारता है तो यह उसकी प्रशंसा नहीं है। उसी प्रकार आपने बड़े-बड़े (हिरण्याक्ष जैसे) दैत्यों को मारा है तो कंसादि दुष्टों को मारने पर आपकी प्रशंसा नहीं अपितु तिरस्कार ही है।

**अलङ्कार**—उपमा, रूपक दोनों में अंगांगिभाव "संकर" अलंकार है। इस श्लोक में कवि ने महाबली व्यक्ति द्वारा बलशालियों के मारने के बाद यदि कमजोर को मारा जाता है तो वह उसकी प्रशंसा नहीं अपितु निन्दा ही है, उसी प्रकार कंसादि तुच्छ जनों को मारने के कारण जो श्रीकृष्ण की प्रशंसा की जाती है वह हिरण्याक्ष जैसे दैत्य का वध करने वाले का अपमान ही है। यहाँ उपमा अलंकार है। उपमा में हरिः एव हरिः श्रीकृष्ण

रूपी सिंह यह श्लिष्ट परम्परितरूपक है। उपमा और रूपक का अंगांगिभाव "संकर" है।

एवं स्तुत्या श्रीकृष्णमभिमुखीकृत्यागमनप्रयोजन वक्तुमारभते—

प्रवृत्त एव स्वयमुज्झिाश्रमः क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि।
तथापि वाचालतया युनक्ति मां मिथस्त्वदाभाषणलोलुपं मनः ॥४० ॥

**अन्वयः**—उज्झितश्रमः (सन्) क्रमेण भुवनद्विषां षेष्टुं स्वयमेव प्रवृत्तः असि। तथापि मिथः त्वदाभाषंण लोलुपं मनः मां वाचालतया युनक्ति।

**संस्कृतभावार्थः**—अविश्रान्तः सन् कंसादिदुष्टानां नाशयितुं स्वमेव उद्यतोऽसि। तथापि एकान्ते त्वया सह संभाषणे उत्सुकं मच्चेतः मां वाचालं करोति।

**व्याख्या**—उज्झितश्रमः= उज्झितः श्रमः येन सः उज्झितश्रमः= परित्यक्तपरिश्रमः सन् अविश्रान्तः सन्। क्रमेण= क्रमशः पर्यायेण। भुवनद्विषाम्= भुवनानि द्विषन्तीति भुवनद्विषस्तेषां भुवनद्विषाम्= जगद्द्रुहाम्, कंसादिदुष्टानाम्। पेष्टुम्= नाशयितुम्। स्वमेव= आत्मनैव न केनापि प्रेरित इत्यर्थः। प्रवृत्तः= उद्युक्तः। असि। तथापि= स्वतः प्रवृत्तेऽपि। मिथः। परस्परम् एकान्ते च। त्वदाभाषण लोलुपं= त्वदा भाषणलोलुपम्= त्वयासह संलापे समुत्सुकम् (मम) मनः= मच्चित्तम्। मां= निस्पृहम् मांनारदम्। वाचालतया= वाचः अस्य सन्तीति वाचालः वाचालस्य भावः वाचालता तया वाचालतया= बहुभाषणतया (सह) युनक्ति= योजयति। वाचालं करोतीति भावः।

**कोशः**—मिथः= "मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि"। इत्यमरः। लोलुपम्= "लुब्धोऽभिलाषुकस्तृष्णः समौ लोलुप लोलुभौ।" इत्यमरः। मनः "चित्तंतुचेतो हृदयं स्वान्तं हृनमानसं मनः "इत्यमरः। "स्यादाभाषणमालापः" इत्यमरः। वाचलतयाृ "स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—भुवनद्विषाम्= भुवन पूर्वक द्विष् धातु से क्विप् प्रत्यय होकर भुवन द्विट् रूप बनता है, और षष्ठी बहुवचन में भुवनद्विषाम् रूप बनता है। "जासिप्रहण" सूत्र से कर्म में षष्ठी विभक्ति हुई। पेष्टुम्= पिष् धातु से तुमुन् प्रत्यय होकर पेष्टुम् रूप बनता है। वाचालतया= वाच् शब्द से "आलजाटचौबहुभषिणि" सूत्र से आलच् प्रत्यय होकर वाचाल शब्द सिद्ध होता है। वाचाल शब्द से भाव में तल् प्रत्यय तथा स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् लगाने से वाचालता, तथा तृतीया के एकवचन में वाचालतया सिद्ध होता है। युनक्ति= युञ्+लट्+तिप् से युनक्ति, रूप सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—(हे भगवन्) थकान से मुक्त होकर क्रमशः संसार के दुष्टों का नाश करने में आप स्वयं ही प्रवृत्त हो रहे हैं। (इसके लिए कुछ कहना निरर्थक है) तो भी एकान्त में आपके साथ वार्तालाप का लोभी मेरा मन मुझे वाचाल बना रहा है। बोलने को बाध्य कर रहा है।

इन्द्र सन्देशोऽवश्यमेव श्रोतव्यं इति सहेतुकमाह—

तदिन्द्रसन्दिष्टमुपेन्द्र । यद्वचः क्षणं मया विश्वजनीनमुच्यते ।
समस्त कार्येषु गतेन धुर्यतामहिद्विषस्तद् भवता निशम्यताम् ॥४१ ॥

**अन्वयः**—तत् उपेन्द्र । इन्द्र सन्दिष्टं विश्वजनीनं यत् वचः क्षणं मया उच्यते तत् अहिद्विष समस्तकार्येषु धुर्यतां गतेन भवता निशम्यताम् ।

**संस्कृतभावार्थः**—तत् हे श्रीकृष्ण ! सर्वलोकोपकारकं इन्द्रसन्देशं यत् मया कथ्यते तत् इन्द्रस्य सकलकर्त्तव्येषु धुरन्धरेण भवता श्रूययताम् ।

**व्याख्या**—तदिति= वाक्योपसंहारे, किंबहुनौक्तिन । उपेन्द्र = इन्द्रं उपगतः उपेन्द्रः तत्सम्बुद्धो हे उपेन्द्र ।= हे इन्द्रानुज, हे श्रीकृष्ण । इन्द्र सन्दिष्टम्= इन्द्रेण सन्दिष्टम्, इन्द्रसन्दिष्टम्= इन्द्रकथितम् । विश्वजनीनम्= विश्वे च ते जनाः त्रिश्वजनाः विश्वजनेभ्यः हितम् इति विश्वजनीनम्= सर्वलोकोपकारकम् । यत्वचः= यद्वाक्यम् । क्षणम्= मुहूर्तमेव, किञ्चितकालमित्यर्थः । मयाः नारदेन । उच्यते= कथ्यते तत्= वचः इन्द्र सन्देश मित्यर्थः । अहिद्विषः= अहिं द्वेष्टि इति अहिद्विट् तस्य अहिद्विषः= इन्द्रस्य, सुरेन्द्रस्येति । समस्तकार्येषु= समस्तनि च तानि कार्याणि समस्तकार्याणि तेषु समस्त कार्येषु= सकल कर्न्तव्येषु । धूर्यताम्= धुरं= भारं वहति इति धुर्यः तस्य भावः धुर्यता ताम् धुर्यताम्= धुरन्धरताम् । गतेन= प्राप्तेन । भवता= त्वया श्रीकृष्णेन इत्यर्थः । निशम्यताम्= श्रूयताम् ।

**कोशः**— हेउपेन्द्र= "उपेन्द्र इन्द्रावरजश्चक्रपाणिश्चतुर्भुज "इत्यमरः । विश्वजनीनम् विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्ताखिलानिखिला निःशेषम्" । इत्मयरः । समस्त के भी यही पर्यायवाची शब्द हैं । धुर्यताम् = धूर्व हे धुर्य धौरेय धुरीणासधुरुधराः" इत्मयरः । अहिह्रिष = सर्पे वृवासुरेडप्यटि इति वैजयन्ती । क्षणम् = निर्व्यापारस्थितौकाल विशेषोत्सवमोः क्षण इत्मयरः ।

विश्वजनीनम्= " विश्वजन शब्द से "आत्मन्विश्वजनभोगोन्तर" सूत्र से 'रव' प्रत्यय हो जाता है और 'रव' के स्थान पर ईन होकर, विश्वजनीनम् रूप सिंद्ध होता है । उच्यते= व्यक्तवचनार्थक ब्रूञ् धातु से यह शब्द बनता है, ब्रू के स्थान पर वचादेश हो जाता है और व के स्थान पर "ड" हो जाता है । तो कर्म में लट् लकार का अर्थात् कर्मवाच्य में यह रूप सिद्ध होता है । अहिद्विषः= द्विष् शब्द से क्विप् प्रत्यय तथा षष्ठी के एकवचन का अहिद्विषः बनता है । धुर्यताम्= धुर् शब्द से "धुरोयड्ढकौ" सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर धुर्यः शब्द बनता है । धुर्य शब्द के भाव तल् प्रत्यय होकर स्त्रीत्त विवक्षा में टाप् होकर धुर्यता, द्वितीया के एक वचन में धुर्यताम् सिद्ध होता है । गतेन= गम् धातु से क्तः प्रत्यय होकर तृतीया एक वचन में गतेन रूप बनता है ।

**हिन्दी**—इसलिए हे उपेन्द्र ! इन्द्र के द्वारा भेजे गये सम्पूर्ण विश्व के हितकारक जिस सन्देश वचन को मैं क्षण भर के लिए कह रहा हूँ, उस वचन को, इन्द्र का समस्त कार्यभार सम्भालने वाले आप सुनिये।

**टिप्पणी**—विष्णु को इन्द्र के समस्त कार्यभार को सम्भालने वाला कहा गया है, इस सम्बन्ध में भागवत के आठवें स्कन्ध के (१८ से २७) श्लोकों में उल्लेख है कि इन्द्रादि देवों को पराजित कर तीनों लोकों पर अधिकार प्राप्त करने के बाद दैत्य राज बलि यज्ञ करने लगा तब दिति की प्रार्थना से भगवान विष्णु वामन रूप धारण करके बलि की यज्ञशाला में पहुँचे। वहाँ उन्होंने मात्र तीन पग भूमि बलि से दान में माँगी। भूमि दान की स्वीकृति मिल जाने पर विष्णु ने विराट रूप धारण कर तीनों लोकों को नाप लिया। तब बलि को पाताल भेज कर इन्द्र को स्वर्ग का राज दे दिया। विष्णु के इस सत्कार्य से प्रसन्न होकर उन्हें उपेन्द्र (इन्द्र का छोटा भाई) के पद पर अभिषिक्त कर दिया।

**अलङ्कार**—काव्यलिङ्ग अलङ्कार। यहाँ पर वचन को इन्द्र का सन्देश तथा लोक हितकारक होना, साथ ही कृष्ण का इन्द्र के समस्त कार्यों को वहन करने वाला होना, ये समस्त वाक्य सन्देश श्रवण के हेतु हैं। अतः यहाँ पदार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

सम्प्रति इन्द्र सन्देशमवतारयति—

अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां भियां तनूजस्तपन द्युतिर्दितेः।
यमिन्द्र शब्दार्थनिषूदनं हरे र्हिरण्यपूर्व कशिपुं प्रचक्षते ॥ ४२ ॥

**अन्वयः**—प्रतिपक्षजन्मनाम् भियाम् अभूमिः तपनद्युतिः दितेः तनूजः अभूत। हरेः इन्द्रशब्दार्थ निषूदनं यं हियण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते।

**संस्कृतभावार्थः**—शत्रुभीतिभ्याः निर्भयः दितिकश्यपसंसर्गात् सूर्यतेजाः सुतः दैत्यः अभूत। परैश्वर्यम् विनाशकं यं दैत्यं लोकाः हिरण्यकशिपुं इति कथयन्ति।

**व्याख्या**—प्रतिपक्षजन्मनाम् = प्रतिकूलः पक्षःयस्य सः प्रतिपक्षः, तस्मात् जन्म यासां ताः प्रतिपक्षजन्मानः तासां प्रतिपक्ष जन्मनां = शत्रुसमुद्भूतानाम्, विपक्षादागतानाम्। भियाम् = भीतीनाम्। अभूमिः = अविषयः निर्भय इतिभावः। तपनद्युतिः = तपनस्य, सूर्यस्य द्युति रिव द्युतिः यस्याऽसौतपनद्युतिः = सूर्यप्रभः। दितेः = कश्यपपत्न्याः। तनूजः = पुत्रः दैत्य इति यावत्। अभूत = अभवत्। हरेः = हरति श्रियमिति हरिस्तस्य हरेः = इन्द्रस्य। इन्द्रशब्दार्थ। निषूदनम् = इन्दति परमैश्वर्यम् लभते इति इन्द्रः, स श्चाऽसौ शव्दश्च इन्द्रशव्दः तस्य योऽर्थः इन्द्रशब्दार्थः निषूदयति इति निषूदनः, इन्द्रशब्दार्थस्य निषूदनस्तमिन्द्रशब्दार्थनिषूदनम् = इन्द्रपरमैश्वर्य निवर्तकम्। यम् = दैत्यम्। हिरण्यपूर्वं = हिरण्यः पूर्व यस्य सः हिरण्यपूर्वस्तम् हिरण्यपूर्वम् = हिरण्यपूर्व कशिपुम् = हिरण्यशब्दपूर्वकं कशिपुम्, हिरव्यकशिपुं इति यावत्। पचक्षतेः = कथयन्ति, लोका इतिशेषः।

**कोशः**—भियाम् = ''दरन्नासौभीतिर्भीः साध्वसं भयम्" इत्यमरः।इन्द्रः = "इन्द्रो मरुत्वान्मघवा विडौजा पाक शासनः। वृद्धश्रवाः सुनासीरः पुरुहूतः पुरन्दरः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—भियाम् = भयार्थक भी धातु से क्विप् प्रत्यय होकर "भी" रूप बनता है जो षष्ठी के बहुवचन में भियाम् सिद्ध होता है। तनूजः= तनू पूर्वक जनि धातु से 'ड' प्रत्यय होकर तनूजः बनता है। इन्द्रः= परमैश्वर्यर्थिक इदि धातु से "ऋजेन्द्र" उणादि सूत्र से इन् प्रत्यय होकर इदित् होने के कारण "इदितो नुम् धातोः" सूत्र से नुम् होकर इन्द्र शब्द बनता है। प्रचक्षते= प्र + चक्ष + झ।

**हिन्दी**—शत्रुओं से कभी भयभीत नहीं होने वाला, सूर्य के समान तेजस्वी दिति का पुत्र (दैत्य) हुआ। जिसे इन्द्र के परमैश्वर्य वाचक शब्दार्थ को नष्ट करने वाला हिरण्यकशिपु कहा जाता है।

**टिप्पणी**—पुराणों के अनुसार वैकुण्ठ के द्वारपाल जय और विजय को शाप वश राक्षस होना पड़ा। जो प्रथम जन्म में हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु, दूसरे जन्म में रावण और कुम्भकर्ण तथा तीसरे जन्म में शिशुपाल और दन्तवक्त्र के रूप में उत्पन्न हुए।

अथ हिरण्यकशिपोर्दुर्वृन्तं कथयति—

समस्तसरेणासुर इत्युपेयुषा चिरायनाम्नः प्रथमाभिधेयताम्।
भगस्य पूर्वावतरस्तरस्विना मनस्सु येन द्युसदां न्यधीयत ॥४३॥

**अन्वयः**—समत्सरेण असुर इति नाम्नः चिराय प्रथमाभिधेयताम् उपेयुषा तरस्विना येन द्युसदाम् मनस्सु भयस्य पूर्वावतरः न्यधीयत।

**संस्कृतभावार्थः**—जनाकल्याणकरिणा असुरनामधेयस्य अन्वर्थतया प्राप्तेन ये. हिरण्यकशिपुना देवानाम् चितेषु भयस्य प्रथम प्रवेशः कृतः।

**व्याख्या**—समत्सरेण = अन्याभयुदयासहिष्णुता मत्सरः तेन सहितः समत्सरस्तेन समत्सरेण= अन्योन्नतिद्वेषिणा। असुर इतिनाम्नः= असुरः= न सुरः असुरः, नम्यतेऽभिधीयते अर्थः अनेन इति नाम तस्यनाम्नः= असुर इत्यभिधानस्य। चिराय = चिरकालेन। प्रथमाभिधेयताम् = अभिधीयते उच्यते इति अभिधेयः, अभिधेयस्य भाव अभिधेयता, प्रथमा या अभिधेयता सा प्रथमाभिधेयता तां प्रथमाभिधेयताम् = अन्वर्थतया मुख्याभिधेयताम्। उपेयुषा= प्राप्तवता। तरस्विना= तरः अस्यास्तीति तरस्वी तेन तरस्विना = बलवता। येन = हिरण्यकशिपुना। द्युसदाम् = दिवि सीदन्ति गच्छन्ती द्युसदः तेषाम् द्युसदाम् = देवानाम्, स्वर्ग निवासीनाम्। मनःसु = चित्तेषु, अन्तः करणेषु इतिभावः। भयस्य= भीतेः पूर्वावतरः= अवतरणम् अवतरः, पूर्वश्चासौ अवतरः पूर्वावतरः= प्रथमप्रादुर्भावः। न्यधीयत = निहितः, विहितः।

**कोशः**—मत्सरः= "मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे" इत्यमरः। इति= "इति हेतु प्रकरणप्रकाशादि समाप्तिषु" इत्यमरः। चिराय= "चिराय चिर रात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः" इत्यमरः। अभिधेयः= "अर्थोऽभिधेयरैवस्तु प्रयोजन निवृतिषु"

इत्यमरः। तरस्विना= "तरसी बलरंहसी" इति विश्वः। मनः "स्वान्तं हृन्मानसंमनः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—तरस्विना= तरस् शब्द से "अस्मायामेधास्रजो विनिः" सूत्र से विन् प्रत्यय होकर तरस्वी, तृतीया एकवचन तरस्विना। असुरः= अस्+उरन्! द्युसदाम्= दिव् पूर्वक षद् धातु से क्विप् प्रत्यय होकर द्युसद्, षष्ठी के बहुवचन में द्युसदाम्। पूर्वावतरः= अव उपसर्ग पूर्वक तृ धातु से "ऋदोरप्" सूत्र से अप् प्रत्यय होकर अवतरः सिद्ध होता है। न्यधीयत= नि+धा + लङ्+त।

**हिन्दी**—दूसरों की उन्नति से द्वेष भाव रखने वाले उस हिरण्यकशिपु सर्वप्रथम "असुर" नाम वाली संज्ञा को प्राप्त किया और उस शक्तिशाली असुर ने ही सर्वप्रथम स्वर्गवासी देवताओं के मन में भय की स्थापना की।

**टिप्पणी**—इस श्लोक में हिरण्यकशिपु की शक्ति का वर्णन किया गया है तथा यह भी बताया गया है कि इसके पूर्व कोई असुर नहीं था। सर्वप्रथम यही हिरण्यकशिपु ही असुर शब्द से सम्बोधित किया गया। सर्वप्रथम यही असुर कहलाया। इसके पूर्व देवता भय नाम से अपरिचित थे, इसने ही देवताओं में भय का संचार किया। देवता भी इससे डरने लगे।

हिरण्यकशिपोः दिक्पालविजयमाह—

दिशानधीशांश्चतुरोयतः सुरानपास्य तं रागहृताः सिषेविरे।
अवापुरारभ्य ततश्चला इति प्रवादमुच्चैरयशस्करंश्रियः॥ ४४॥

**अन्वयः**—श्रियः यतः दिशाम् अधीशान् चतुरः सुरान् अपास्य तम् रागहृताः सिषेविरे ततः आरभ्य अयशस्करं चला इति उच्चैः प्रवादम् अवापुः।

**संस्कृतभावार्थः**—सम्पत्त्यः यदा दिक्पालान् इन्द्रयमवरुणकुबेरान् विहाय रागाहृताः तं दैत्यं भेजिरे ततः प्रभृति अकीर्त्तिकरं प्रचुरं लेकापवादं प्रापुः।

**व्याख्या**—श्रियः= सम्पत्तयः, सम्पदः। यतः= यदा, यस्मात् कालादित्यर्थः। दिशाम्= पूर्वादीनाम्, ककुभाम्। अधीशान्= अधिपतीन्, दिक्पालानपि। चतुरः= चतुः संख्यकान्। सुरान्= देवान्, इन्द्रयमवरुण कुबेरान्। अपास्य= परित्यज्य। तम्= दैत्यं हिरण्यकशिपुम्। रागहृताः= रज्यते इति रागः, रागेणहृता रागहृताः= रागाकृष्टाः, प्रेमाकर्षिताः, न तु बलादित्यर्थः। सिषेविरे= सेवयामासुः। ततःआरभ्य= तस्मात् कालादारम्य। अयशस्करं= न यशः अयशः, अभशःकरोति इति अपशस्करस्तम् अपशस्करम्= अकीर्त्तिकरम्। चला= चञ्चला अस्थिरा। इति=इत्यं, एवंभूतं। उच्चैः= प्रचुरम्, सर्वव्यापिनम्। प्रवादम्= लोकनिन्दाम्। अवापुः= प्रापुः, लेभिरे।

**कोशः**—श्रियः= "सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च" इत्यमरः।

दिशाम्= "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्चताः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—दिशाम् = "ऋत्विक् दधृक्" सूत्र से क्विप् प्रत्यय होकर दिश् शब्द बनता है। अपास्य = अप उपसर्ग पूर्वक क्षेयणार्थक असु धातु से क्त्वा प्रत्यय तथा क्त्वा को ल्यप् प्रत्यय होकर अपास्य रूप सिद्ध होता है। रागहता = हृ धातु से क्त प्रत्यय हृता। रञ्ज् धातु से भाव में घञ् प्रत्यय तथा रञ्ज् के न का लोप होकर राग बनता है। आरम्य—आङ् उपसर्गपूर्वक रम् धातु से क्त्वा प्रत्यय तथा क्त्वा को ल्यप् होकर आरम्य बनता है। सषेविरे = सेव + लिट् + इरे से सिषेविरे सिद्ध होता है। अयशस्करम् = अयशस् पूर्वक कृ धातु से "कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु" सूत्र से ट प्रत्यय होने पर करः तथा "अतः कृकमिकंसकुम्भपात्र" सूत्र से विसर्ग स् होकर अयशस्करः रूप बना। प्रवादम् = प्र उपसर्ग पूर्वक वद् धातु से भाव में घञ् प्रत्यय होकर प्रवाद रूप बना। अवापुः = अव + लिट् + झि + उस्।

**हिन्दी**—लक्ष्मी (सम्पत्ति) जिस समय से चार दिक्पालों को छोड़कर (इन्द्र वरुण और कुबेर) उस हिरण्यकशिपु की ओर आकर्षित होकर उसकी सेवा करने लगी तभी से लक्ष्मीचञ्चल है इस अपकीर्त्ति कारक लोक निन्दा को प्राप्त हो गई।

**टिप्पणी**—कवि ने इस श्लोक में लक्ष्मी चञ्चला होने की सुन्दर युक्ति प्रदान की है।

हिरण्यकशिपुभयाद् देवानां दुर्गादिविधानमाह—

पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं बलानि शूराणि धनाश्च कञ्चुकाः।
स्वरूपशोभैकफलानि नाकिनां गणैर्यमाशङ्क्य तदादि चक्रिरे ॥४५॥

**अन्वयः**—नाकिनां गणैः यम् आशंक्य तदादि स्वरूपशोभैक फलानि पुराणि दुर्गाणि चक्रिरे, आयुधं निशातं (चक्रे) बलानि शूराणि, कञ्चुकाः घनाः (चक्रिरे)

**संस्कृतभावार्थः**—देवगणैः यम् दैत्यं बाधकरूपेण संभाव्य पुराणि दुर्गाणि कृतानि, शस्त्रं तीक्ष्णं कृतम् सैन्यानि शौर्यवन्ति कृतानि, कवचाः दुर्भेदाः चक्रिरे।

**व्याख्या**—नाकिनाम् = नास्तिअकम् यत्र सः नाकः सः आश्रयत्वेन अस्तियेषां ते नाकिनस्तेषाम् नाकिनाम् = स्वर्गीणाम्, देवानाम् इत्यर्थः। गणैः = यूथैः, समूहैः। यम् = हिरण्यकशिपुम्। आशङ्क्य = बाधकरूपेण सम्भाव्य। तदादि = स कालः आदिर्यस्मिन् तत् तदादि = तदारभ्य। स्वरुप शोभैकफलानि = स्वरूपस्य शोभा स्वरूपशोभा, सा एव एकं फलं येषां तानि स्वरूपशोभैकफलानि = बाह्यायरूप शोभैक प्रयोजनानि। पुराणि = नगराणि। दुर्गाणि प्राकार परिवादि भिरगम्यानि। चक्रिरे = कृतानि। आयुधम् = युध्यन्ते अनेन इति आयुधम् = शस्त्रम्, शस्त्रसमूहमित्यर्थः। निशातम् = तीक्ष्णम्। चक्रे = विदधे। बलानि = सैन्यानि। शूराणि = शौर्यवन्ति। कञ्चुकाः = कवचाः, कवचाः लोहवर्माणि। घनाः = सुदृढ़ा। चक्रिरे।

**कोशः**—नाकिनाम् = "स्वरव्ययं स्वर्गनाक त्रिदिव त्रिदशालयाः" इत्यमरः। पुराणि = "पूःपूरी नगर्यो वा पत्तनं पुटभेदनम्" इत्यमरः। आयुधम् = "आयुधं तु प्रहरणम् शस्त्रमस्त्रमयास्त्रियौ"इत्यमरः।

बलानि = "बलं सैन्यं चक्रं चानीकमस्त्रियाम्"इत्यमरः ।

कञ्चुकाः = "कञ्चु को वारवाणोऽस्त्री" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—नाकिनाम् = नाक शब्द से "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो" सूत्र से णिनि प्रत्यय होकर नाकिनः रूप बनता है। आशङ्क्य = आङ् उपसर्ग पूर्वक शंक धातु से क्त्वा प्रत्यय तथा उपसर्ग होने के कारण ल्यप् होकर आशङ्क्य रूप बनता है। दुर्गाणि = दुर् उपसर्ग पूर्वक गम् धातु उणादि सूत्र "सुदुरोरधिकरणे" से ड प्रत्यय होकर दुर्ग रूप बनता है। इसके नपुंसक लिङ्ग बहुवचन में दुर्गाणि रूप बनता है। निशातम् = नि उपसर्ग पूर्वक तनुकरणार्थक शो धातु क्त प्रत्यय हो जाता है। क्त प्रत्यय होने पर "शच्छोरन्यतरस्याम्" सूत्र से शो के ओकार के स्थान पर आकारान्त आदेश हो जाता हैं तब निशातम् रूप सिद्ध होता है। चक्रिरे = कृ + लिट् + इरे।

**हिन्दी**—देवता के समूहों ने जिस हिरण्यकशिपु की आशंका से उसी समय से स्वरूप से शोभा को प्राप्त होने वाले नगरों को चारों ओर खाई, परकोटा आदि से सुदृढ़ दुर्ग बना लिया, हथियारों को तेज कर लिया, सेनाओं को शक्तिशाली बना लिया, और कवचों को सुदृढ़ बना लिया।

प्रकारान्तेरण हिरण्यकशिपुसमुत्पन्नं देवानां भयमाह—

**स सञ्चरिष्णुर्भुवनान्तरेषुयां यदृच्छयाऽशिश्रियदाश्रयः श्रियः।**
**अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसन्ध्यं त्रिदशैर्दिशे नमः ।।४६ ।।**

**अन्वयः**—भुवननान्तरेषु सञ्चरिष्णुः श्रियः आश्रयः सः यदृच्छया यां दिशम् अशिश्रियत्, मुकुटोपलस्खलकतरैः त्रिदशैः तस्यै दिशे नमः अकारि।

**संस्कृतभावार्थः**—त्रिभुवनेषु संचरन श्रियः आधारः स दैत्यः यां दिशं अगच्छत् अञ्जलिंबध्वा दैवगणैः ता दिशमेव त्रिसंध्यासु तस्मै दैत्याय नमः कृतम्।

**व्याख्या**—भुवनान्तरेषु = भुवनानाम् अन्तराणि भुवनान्तराणि तेषु भुवनान्तरेषु अथवा अन्यानि भुवनानि भुवनान्तराणि तेषु भुवनान्तरेषु = लोकान्तरेषु, त्रिभुवनमध्येषु इति वा। सञ्चरिष्णुः = भ्रमणशीलः। श्रियः = लक्ष्म्याः, राज्यलक्ष्मीनामित्यर्थः आश्रयः = आधारः। सः = हिरण्यकशिपुः। यदृच्छया = स्वेच्छया। यां दिशम् = यां पूर्वादिकाष्ठाम्। अशिश्रियत् = असेवत् अगमत्। मुकुटोपलस्खलत्करैः = मुकुटेषु से उपलाः तेषु स्खलन्तः कराः येषाम् मुकुटोपलस्खलत्करास्तैः मुकुटोपलस्खलत्करैः = मौलिमणिसञ्चरद्धस्तैः शिरसिबद्धाञ्जलिभिरित्यर्थः। त्रिदशैः = तिस्रः दशा बालकौमार्ययौवनानि" येषां तैः त्रिदशैः, = त्रिदशैः = देवैः अभरैः। त्रिसन्ध्यम् =

त्रिस्वपि सन्ध्यासु, सन्ध्यातये = तस्यै = दैत्याश्रितायै। दिशे = ककुभे, दिशायै। नमः= नमस्कारः। अकरि = कृतम्।

**कोशः**—"अथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्" इत्यमरः। यदृच्छया: "स्वेच्छा यदृच्छा स्वच्छन्दः स्वैरता चेति ताः समाः" इत्यमरः। मुकुटोपलस्खलत्करैः= "अयमुकुटं किरीटं पुंनपुंसकम्" इत्यमरः। "पाषाण प्रस्तर ग्रावोपलाश्मानः शिला दृषत" इत्यमरः। "उपलः प्रस्तरे रत्ने" इति विश्वः। त्रिदशैः= "अमरा निर्जरा देवास्त्रिद शा विवुधाः सुराः। सुपर्वाणः सुमनस्त्रिदिवेशा दिवोंकसः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—सञ्चरिष्णुः= सम् उपसर्ग पूर्वक गत्यर्थक चर् धातु से ताच्छील्य अर्थ में "अलंकृञ्" सूत्र से इष्णुच् प्रत्यय होने पर सञ्चरिष्णुः रूप बनता है। आश्रयः= आङ् उपसर्ग पूर्वक श्रिञ् सेवायां धातु से अच् प्रत्यय होने पर आश्रय बनता है।अशिश्रियत = णिजन्त श्रिञ् धातु से लङ् लकार में "णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ्" सूत्र से चङ् प्रत्यय होने पर श्रि को द्वित्व हो जाता है तथा अडागम होकर अशिश्रियत् रूप सिद्ध होता है। त्रिसन्ध्यम् = यहाँ पर "तद्धितार्णोत्तर पदासमाहारेच" सूत्र से समांहार में द्विगु समास होता है। द्विगुरेकवचनम्" सूत्र से एकवचन तथा नपुंसकलिङ्ग ही होता है। तस्यैदिशे नमः= यहाँ नमः का योग रहने के कारण "नमः स्वस्तिस्वाहा स्वधाडलंवषड्योगाच्च" सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हो जाती है। अकारि= कृ + कर्मणि लुङ् + त "चिण् भावकर्मणो." सूत्र से चिण् प्रत्यय "चिणोलुक्" सूत्र से चिण् शब्द को लुक् होकर अकारि शब्द बनता है।

**हिन्दी**—सम्पूर्ण लोको में विचरण करने वाला, लक्ष्मी का आधार वह हिरण्यकशिपु स्वेच्छा से जिस दिशा में जाता था उसी दिशा को देवता मुकुटमणियों पर हाथ रखकर तीनों संध्याओं के समय नमस्कार किया करते थे।

**टिप्पणी**—उस बलशाली हिरण्यकशिपु दैत्य का इतना भय देवताओं के मन में व्याप्त हो गया था कि निरन्तर उससे भयभीत रहते थे। यहाँ तक कि सन्ध्या-वन्दन के समय भी दिशा नियम का त्यागकर जिस दिशा को वह जाता था उसी दिशा को देवता लोग नमस्कार किया करते थे। कहा गया है—

"हिरण्यकशपू राजा यां यां दिशमुदैक्षत।
तस्यै तस्यै नमश्चक्रुर्देवा: ऋषिगणैः सह॥ इति

नृसिंहावतारकृतं हिरण्यकशिपोर्वधमाह—

सटाच्छटाभिन्नघनेन विभ्रता नृसिंह। सैंहीमतनुं तनुं त्वया।
स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः॥४७॥

**अन्वयः**—नृसिंह। अतनुं सैंही तनुं विभ्रता सटाच्छटाभिन्नघनेन त्वया सः मुग्धकान्तस्तन सङ्गभङ्गुरैः नखैः उरोविदारं प्रतिचस्करे॥

**संस्कृतभावार्थः**—हे प्रभो! विशलंसिहशरीरं धृत्वा त्वया (नृसिंहावतारभाजा) सः हिरण्यकशिपुः कोमलनरवैः वक्षस्थलं विदार्य हतः।

**व्याख्या**—नृसिंह != ना सिंह इव नृसिंहः तत्सम्बुद्धौ हे नृसिंह। = हे नृसिंहावतारभगवन्, हे नरश्रेष्ठ इतियावत्। अतनुम् = न तनुः अतनुः ताम् अतनुम् = विस्तार्णाम्, अति महतीम्। सैंहीम् = सिंहस्य इयम् सैंही, तां सैंहीम् = सिंहाकाराम्। तनुम् = शरीरम्। विभ्रता = धारयता। सटाच्छटाभिन्नघनेन = सटानां जटानां छटाभिः भिन्नाः अपसरिता घनाः येन सः सटाच्छटाभिन्नघनस्तेन सटाच्छटाभिन्नधनेन = केसरसमूहविदारितमेघेन, अभ्रङ्कष शरीत्वादिति भावः। त्वया = भवता। सः = हिरण्यकशिपुः। मुग्धकान्तास्तन सङ्गभङ्गुरैः = मुग्धाः याः कान्ताः मुग्धकान्ताः मुग्धकान्तानाम् ये स्तनाः मुग्धकान्तस्तनाः तेषाम् सङ्गः, मुग्धकान्तास्तनसङ्ग तेन भङ्गुरास्तैः। नखैः = कररुहैः। उरोविदारम् = वक्षस्थलं विदीर्य। प्रतिचस्करे = हतः, मारितः।

**कोशः**—तनुम् = "तनुः काये कृशेऽल्पे च" इति विश्वः।" जटा सटा के सरयोः" इति विश्वः। " मुग्धे सोम्ये नवे मूढ़े " इति वैजयन्ती।

"प्रमदा मानिनी कान्ता ललना च नितम्बिनी"इत्यमरः।

"स्तनौ कुचौ"इत्यमरः। "पुनर्भवः कररु हो नखोऽस्त्रीनरवरो आस्त्रिमाम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—सैंहीम् = सिंह शब्द अण् प्रत्यय तथा ङीप होकर द्वितीया एकवचन में सैंहीम् रूप बनता है। विभ्रता = भरणार्थक भृञ् धातु शतृ प्रत्यय होकर विभ्रत, तृतीया एक वचन में विभ्रता रूप बनता है। उरोविदारम् उरस् पद तथा वि उपसर्ग पूर्वक दृ धातु से "परिक्लिश्यमानेच" सूत्र से 'णमुल' प्रत्यय होकर उरोविदारम् रूप सिद्ध होता है। प्रतिचस्करे = प्रति पूर्वक कृ धातु से कर्मवाच्य लिट् लकार में "ऋच्छत्यृताम्" सूत्र से गुण हो जाता है तथा "हिंसांयां प्रतेश्च" सूत्र सुट् का आगम होता है तो प्रथम पुरुष एक वचन में यह रूप सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—हे नृसिंह। विशाल नृसिंह शरीर को धारण करने वाले, अपने बालों के समूह से मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले आपके द्वारा उस हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को, नवयुवतियों के स्तनों के संसर्ग से भी टेढ़े हो जाने वाले नाखूनों द्वारा विदीर्ण कर दिया गया।

**टिप्पणी**—कठोर तपस्या करके हिरण्यकशिपु ने भगवान भोलेनाथ शिव से वरदान माँगा कि मैं किसी हथियार से, किसी मनुष्य, पशु, देव, दानव से नहीं मरुं इसके अतिरिक्त यह वरदान माँगा कि न रात में मरुं न दिन में मरुं। न बाहर न अन्दर न पृथिवी पर न आकाश में मेरी मृत्यु हो। यह वरदान माँग कर उसने अपने आपको अवध्य मानते हुए देव, ऋषि आदि पर अत्याचार प्रारम्भ कर दिये और अपने आपको स्वयं भगवान् समझने लगा। परम भक्त अपने पुत्र प्रहलाद को भक्ति नहीं छोड़ने पर

मारने का उपाय करने लगा। अन्त में खम्भे से बाँधकर वध करने जा रहा था तभी भगवान् श्री हरि ने नृसिंह रूप धारण कर खम्भा चीर कर प्रहलाद को बचाया और हिरण्यकशिपु को उसके वरदान के अनुरूप ही नाखूनों से वक्षस्थल विर्दीण कर मार डाला था। ऐसी पौराणिक कथा है।

अथास्य जन्मान्तरचेष्टितान्याचक्षणोऽयमेव जन्मान्तरे रावणोऽभूदिति, कथयति—

विनोदमिच्छन्नथ दर्पजन्मनो रणेन कण्ड्वास्त्रिदशैःसमं पुनः।
स रावणोनाम निकामभीषणं बभूव रक्षः क्षतरक्षणं दिवः ॥४८॥

**अन्वयः**—अथ सः पुनः त्रिदशैः समं रणेन दर्पजन्मनः कण्ड्वाः विनोदं इच्छन् दिवः क्षतरक्षणं निकामभीषणम् रावणोनाम रक्षः बभूव।

**संस्कृतभावार्थः**—स्ववधानन्तरं सः हिरण्यकशिपुः पुनः देवैः सहयुद्धेनगर्वयुक्तः देवानां विनाशमिच्छन् स्वर्गस्य विनाशिरक्षणम् अति भयङ्करं रावणनामधेयम् राक्षसो बभूव।

**व्याख्या**—अशः स्ववधानन्तरम्, अन्यजन्मनि। सः= हिरण्यकशिपुः। पुनः= भूयोऽपि। त्रिदशैः= देवैः, अमरैः। समं= सार्धम्। रणेन= युद्धेन। दर्पजन्मनः= दर्पाज्जन्म यस्या : सा दर्पजन्मा तस्याः दर्पजन्मनः = गर्वोत्पन्नायाः, अहंकार प्रभवायाः। कण्ड्वा = कण्डूते। विनोदम्= अपनोदम्। इच्छन्= वाञ्चछन्। दिवः= स्वर्गस्य। क्षतरक्षणम्= रक्ष्यते अनेनेति रक्षणम्, क्षतं रक्षणं येन तत् क्षतरक्षणम्= विनाशित रक्षणम्। अनेन देवसर्वस्वापहारित्वमुक्तम्। निर्कामभीषणम्= भीषयते भयं उत्पादयति इति भीषणम्, निकामं भीषणम् इति निकामभीषणम्= नितरांभयङ्करम्। रावणः= रावण इति नामधेयम्। रावण नाम्ना प्रसिद्ध इत्यर्थः। रक्षः= राक्षसः। बभूव= जातः, राक्षसयोनौ उत्पन्नेत्यर्थः।

वाल्मीकि रामायणे उत्तरकाण्डे उक्तम्—

"यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम्।
तस्मात् त्वं रावणो नाम नाम्ना वीरो भविष्यसि।" इति।

**कोशः**—समम्= "साकं सार्धम् समं सह"इत्यमरः।

दर्पजन्मनः= "दर्पोऽवलेपोऽवष्ठम्भश्चितोद्रेको स्मयोमदः"इत्यमरः दिवः= "सुरलोको द्यौदिवो" इत्यमरः। निकामभीषणम्= "कामं प्रकामं पर्याप्तं निकानेष्टं यथेप्सितम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—विनोदम् = वि उपसर्ग पूर्वक नुद् धातु से भाव में घञ् प्रत्यय होने से विनोदः, द्वितीया के एकवचन में विनोदम् रूप बनता है। इच्छन्= इच्छार्थक इस धातु से शतृ प्रत्यय होने पर "इषुगामि" सूत्र से ष को छ होकर इच्छन् रूप बनता है। क्षतरक्षणम्= क्षण् धातु से क्त प्रत्यय होकर क्षतम्। रक्षं धातु से ल्युट् प्रत्यय होकर रक्षणम रूप बनता है। रावणः= रावण शब्द की व्युत्पत्ति दो तरह से की जा सकती

है। (१) विश्त्रवसोऽपत्यंपुमान् रावण इस विग्रह में "तस्यापत्यम्" सूत्र से अण् प्रत्यय हो जाता हैं और "विश्रवसो विश्रवणरवणौ" सूत्र से विश्रवस् के स्थान पर रावण आदेश होकर रावण रूप सिद्ध होता है।

(२) पौराणिकों के अनुसार रावयति इति रावणः यह व्यत्पत्ति की जाती है। रु धातु से व्यत् ल्युट् प्रत्यय होकर रावण शब्द सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—इसके बाद हिरण्यकशिपु फिर देवताओं के साथ युद्ध के द्वारा अहङ्कार जन्म खुजलाहट को दूर करने की इच्छा से स्वर्ग की सुरक्षा को नष्ट करने वाला नितान्त भयङ्कर रावण नामक राक्षस हुआ।

रावणस्य तपः शौर्यं दर्शयति—

प्रभुर्वुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरोऽतिरागात् दशमं चिकर्तिषुः।
अतर्कयत् विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः ॥४९॥

**अन्वयः**—यः भुवनत्रयस्य प्रभुः बुभूषुःअतिरागात् दशमं शिरः चकिर्तिषुः इष्टसाहसः इच्छासदृशं पिनाकिनः प्रसादं विघ्नम् इव अतर्कयत्।

**संस्कृतभावार्थः**—सः रावण त्रिभुवनस्य स्वामीभवितुमिच्छुः, अत्यन्तोत्साहात् दशमं मस्तकं कर्तितुमिच्छुः साहसी स्वेच्छानुकूलम् शिवस्य वरम् इव व्यचारयात्।

**व्याख्या**—यः= रावणः। भुवनत्रयस्य= त्रयः अवयवा अस्येतित्रयम् भुवनानां त्रयं भुवनत्रयं तस्य भुवनत्रयस्य= त्रैलोकस्य, लोकत्रयस्य इतियावत्। प्रभुः= प्रभवति निग्रहानुग्रहयोः इति प्रभुः= ईश्वरः, स्वामी। बुभूषुः= भवितुमिच्छुः। अतिरागात्= अतिशयो रागः अतिरागस्तस्मात् अतिरागात् = मोहोत्साहात्। दशमं= दशमं मस्तकम्। चिकत्तिषुः= कर्तितुमिच्छुः। इष्टसाहसः= इष्टं साहसं यस्य सः इष्टसाहसः= साहसप्रियः। इच्छासदृशं= समान इव पश्यति सदृशः, इच्छयासदृश इच्छासदृशस्तम्, इच्छासदृशम्= मनोऽनुकूलम्, स्वेच्छया इतियावत्। पिनाकिनः= पिनाकः अस्य अस्तीति पिनाकी तस्य पिनाकिनः=शिवस्य, शंकरस्य वा। प्रसादम्= वरम्। विघ्नमिव= शिरच्छेदनकर्मान्तरायमिव, प्रत्यूहमिव वा। अतर्कयत्= उत्प्रेक्षितवान्, व्यचारयत् इति यावत्।

**कोशः**—भुवनत्रयस्य= "अथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्" इत्यमरः।

प्रभुः= "आधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः" इत्यमरः।

इच्छासदृशम्= "इच्छाकांक्षा स्पृहा तृड् वांछा लिप्सा मनोरथः" इत्यमरः प्रसादम्= " प्रसादोऽनुग्रहे" इति मेदिनी। "स्यात् प्रसादोऽनुरोगेऽपि" इत्यमरः। विघ्नम्= "विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः"इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—प्रभुः= प्र उपसर्ग पूर्वक भू धातु से "विप्रसम्भ्योऽड्वसंज्ञायाम्" सूत्र से उ प्रत्यय होकर प्रभुः शब्द बनता है। बुभूषुः= सन्नत भू धातु से "सनाशंभिक्ष उः" सूत्र से 'उ' प्रत्यय होकर बुभूषु शब्द बनता है जो प्रथमा विभक्ति एक वचन बुभूषुः शब्द

सिद्ध होता है। दशमः दशन् शब्द से "नान्तादसंख्यादेर्मट्" सूत्र से मट् प्रत्यय होकर दशमम् शब्द बनता है।

इष्टसाहसः= इष् धातु + क्त प्रत्यय होकर इष्ट शब्द सिद्ध होता है। प्रसादम् = प्र उपसर्ग पूर्वक षदलृ धातु से भाव में घञ् प्रत्यय होकर प्रसाद शब्द बना जो द्वितीया के एक वचन में प्रसादम्रूप बनता है। विघ्नम् = वि उपसर्ग पूर्वक 'हन' धातु से क प्रत्यय होकर विघ्नः शब्द बनता है। चिकर्तिषु = कृ + सन् + उः अतर्कयत् = तर्क + स्वार्थैणिच् + लङ् + तिप्।

**हिन्दी**—तीनों लोकों का स्वामी होने का इच्छुक, अत्यधिक भक्ति-उत्साह से दशवें सिर को काटने का इच्छुक महासाहसी, जिस रावण ने अपनी इच्छानुकूल भगवान शिव के वरदान को भी विघ्न के समान समझा। (वह रावण नाम का राक्षस हुआ, ऐसा पूर्व श्लोक के साथ अन्वय करना चाहिए)

**टिप्पणी**—शिव पुराण के अनुसार, एक बार रावण भगवान् शिव को प्रसन्न करके तीनों लोकों का स्वामी बनने की इच्छा से अपने सिरों को काट-काट कर अग्नि में आहुतियाँ देने लगा। इस प्रकार नौ (९) सिर काटने के बाद जब दशवाँ सिर भी काटने को उद्यत हुआ तो भोलेशंकर ने उसके इच्छानुसार वरदान दिया।

शिवपुराणानुसार—

"चकार राक्षसश्रेष्ठो न प्रसन्नस्तथापिह।
तदा शिरांसि छित्वा सः पूजनं शंकरस्य च॥
आरब्धं च तदातेन छिन्नानि नव वै यदा।
एकस्मिन्नेव शिष्टेतु प्रसन्नः शंकरस्तदा॥
मनसश्चेप्सितं ब्रूहि ददामि तव राक्षस।
यदि प्रसन्नो देवेश देहिमे बलमुतमम्॥
शिरांसि पूर्ववत्स्वामिन् कुरु में शंकर प्रभो।
इति तस्य वचः श्रुत्वा भक्तिमत्त्वा च्चयकार सः॥
यथेप्सितं ददौ तस्मै हयतुलं बलमुक्तमम्।
प्रसादं तस्य सम्प्राप्य जगाम भवनं प्रति॥ (शिवपुराणात्)

अथ रावणस्य कैलासोक्षेपणवृन्तान्त माह—

समुत्क्षिपन् यः पृथिवींभृतां वरं वर प्रदानस्य चकार शूलिनः।
त्रसत्तुषाराद्रि सुताससम्भ्रम स्वयंगृहाश्लेष सुखेन निष्क्रयम्॥५०॥

**अन्वयः**—यः पृथिवीभृतां वंर समुत्क्षिपन् शूलिनः वरप्रदानस्य त्रसन्तुषाराद्रि सुता ससम्भ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् चकार।

**संस्कृतभावार्थः**—यः पर्वतानाम् श्रेष्ठं कैलासं उपरि प्रक्षिपन् शिवस्याशीर्वादप्रदानस्य भयाक्रान्तपार्वत्याः स्वयंग्रहालिङ्गनानन्देन विनिमयम् चकार।

**व्याख्या**—यः= रावणः। पृथिवीभृताम्= पृथिवीं बिभ्रति इति पृथिवीभृतः तेषाम् पृथिवीभृताम्= भूधराणाम्, पर्वतानाम्। वरं= श्रेष्ठम्, कैलासमित्यर्थः। समुत्क्षिपन्= बलदर्पादुपरि क्षिपन् उत्तोलयन्। शूलिनः= शूलं त्रिशूलं अस्यास्तीति शूली तस्य शूलिनः= शिवस्य शंकरस्य वा। वरप्रदानस्य= ब्रियते इति वरः, प्रकृष्टं दानम् प्रदानम्, वरस्य प्रदानम् वरप्रदानम् तस्य वरप्रदानस्य= इष्टवितरणस्य। त्रसत्तुषाराद्रिसुतासम्भ्रम स्वयं ग्रहाश्लेष सुखेन= तुषारस्य अद्रिः तुषराद्रिः तुषाराद्रेः सुता, तुषाराद्रिसुता, त्रसन्ति चासौ तुषाराद्रिसुता त्रसन्तुषाराद्रिसुता, सम्भ्रमेण सहितः ससम्भ्रमस्तेन, त्रसन्तुषाराद्रिसुतायाः ससम्प्रमेण यः स्वयं ग्रहः तेन आश्लेषस्तेन यत् सुखम्, त्रसन्तुषाराद्रिसुता ससम्भ्रम स्वयंग्रहाश्लेषसुखन् तेन त्रसन्तुषाराद्रिसुता ससम्भ्रम स्वयंग्रहाश्लेषसुखेन= विभ्यत्पार्वती सत्वरसभयस्वयंकृत कण्ठाग्रहालिङ्गनसुखेन। निष्क्रयम्= निष्कृतिम्, प्रत्युपकारमिव, चकार= कृतवान्।

**कोशः**—वरम्= "देवात् वृत्ते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीवं मनाक् प्रिये" इत्यमरः। शूलिनः= "शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः" इत्यमरः। निष्क्रियम्= "निष्क्रियो बुद्धियोगे स्यात् सामर्थ्ये निगतावपि" इति वैजयन्ती।

**व्याकरणम्**—पृथिवीभृताम्= यहाँ पर "यतश्च निर्धारणे" सूत्र से निर्धारण अर्थ में षष्ठी विभक्ति हुई। समुत्क्षिपन्= सम् और उत् उपसर्ग पूर्वक क्षिप् धातु से शतृ प्रत्यय होकर समुत्क्षिपन्, प्रथमा विभक्ति एक वचन का रूप समुत्क्षिपन् रूप बनता है। वरप्रदानस्य= वृञ् धातु से अप् प्रत्यय होकर वरः बनता है तथा दा धातु ल्युट् प्रत्यय होकर दानम् सिद्ध होता है। शूलिन= शूल+इनिः प्रत्यय। निष्क्रियम्= निस् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से अच् प्रत्यय होकर निष्क्रियम् रूप बनता है।

**हिन्दी**—जिस रावण ने पर्वतों में श्रेष्ठ कैलास पर्वत को उठाते हुए भगवान् शंकर के वरदान का बदला (कैलास पर्वत के हिलने डुलने के कारण) डरती हुई पार्वती के द्वारा घबराहट में अपने आप ही आलिङ्गन जन्य सुख से चुका दिया।

**अलङ्कार**—परिवृत्ति अलङ्कार।

यहाँ श्लोक में अश्लेष सुख और वर प्रदान में क्रमशः परस्पर विनिमय बताया गया है, इसलिए यहाँ परिवृत्ति अलङ्कार है। जहाँ पर विनिमय किया जाता है वहाँ परिवृति अलङ्कार होता है। साहित्यदर्पण में लक्षण दिया गया है—

"परिवृत्तिविनिमयः समन्यूनाधिकैर्भवे" इति

रावणस्य स्वर्गलुण्ठनमाह—

पुरीमवस्कन्द लुनाहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषाबलीय इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ॥५१॥

**अन्वयः**—बली यः नमुचिद्विषा विगृह्य पुरीम् अवस्कन्द, नन्दनं लुनीहि, रत्नानिभुषाण, अभराङ्गनाः हर, इत्थम् अहर्दिवं दिवः अस्वास्थ्यं चक्रे।

**संस्कृतभावार्थः**—शक्तिशाली यः रावणः इन्द्रेण विरोधं कृत्वा अमरावतीं अवरुरोध, नन्दनवनं विच्छेद, रत्नानिमुभोष, अभराङ्गनाः अपहरत्, इत्थम् प्रतिदिनं स्वर्गस्यापकारं चकार।

**व्याख्या**—बली= शक्तिसम्पन्नः। यः= रावणः। नमुचिद्विषा= न मुञ्चतीति नमुचिः, नमुचिं द्वेष्टि इति नमुद्विट् तेन नमुचिद्विषा= इन्द्रेण सह। विगृह्य= वैरंविधाय, निरुध्य वा। पुरीम्= देवनगरीम् अमरावतीनित्यर्थः। अवस्कन्द= पुनः पुनरवरुरोध। नन्दनं= इन्द्रोद्यानम्। लुनीहि= विच्छेद। रत्नानि= श्रेष्ठवस्तूनि, मणीन् वा। मुषाण= चोरयामास। अमराङ्गनाः= देवाङ्गनाः, अप्सरसो वा। हर= जहार। इत्थम्= अनेन प्रकारेण। अहर्दिवं= अहनिच दिवा च इति अहर्दिवं= प्रतिदिनम्। दिवः= स्वर्गस्य। अस्वास्थ्यम्= स्वास्मिन् तिष्ठति वर्त्तते इति स्वस्थः, न स्वस्थः अस्वस्थः तस्य भावः अस्वास्थ्यम्= अपकारम् उपद्रवम् इतियावत्। चक्रे= चकार।

**कोशः**—"जम्भभेदी हरिहयः स्वराण्नमुचिसूदनः"इत्यमरः। पुरीम्= "पूःस्त्री पुरीनगर्यो वा पतनं पुटभेदनम्" इत्यमरः। "नगरीतु अमरावती" इत्यमरः। नन्दनम्= "नन्दनं वनम्"इत्यमरः। रत्नानि= "रत्नं श्रेष्ठे मणावपि" इति विश्वः।

**व्याकरणम्**—विगृह्य = वह उपसर्गपूर्वक ग्रह धातु से 'कत्वा' के स्थान पर ल्यप् और सम्प्रसारण र् को ऋ होकर विगृह्य रूप बनता है। लुनीहि= छेदनार्थक लुञ् धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष एक वचन का रूप लुनीहि। इसमें लुञ् धातु से "क्रयादिभ्पः श्ना" सूत्र से श्ना हो जाता है तथा "प्वादीनां ह्रस्व" सूत्र से लू के दीर्घ ऊ को ह्रस्व उ हो जाता है तदनन्तर "ईहल्यधोः" सूत्र से श्ना के आकार को ई कार हो जाने पर लुनीहि रूप सिद्ध होता है। मुषाण= मुष् धातु से "क्रयादिभ्पः श्ना" सूत्र से होता है। तत्पश्चात् "हलःश्नः शानज्झौ" सूत्र से श्ना के स्थान पर शानच् आदेश होता है और मुषाण सिद्ध होता है। उपर्युक्त पद्य के अवस्कन्द, लुनीहि, मुषाण और हर आदि क्रियापद लोट् लकार मध्यम पुरुष एक वचन में प्रयुक्त हुए हैं। इसमें "क्रियासमभिहारे लोट् लोटौ हिस्वो वाचतध्वमोः सूत्र से अनुवृत्ति आने पर "समुच्चयेऽन्यतरस्याम्" सूत्र से काल सामान्य पुरुष सामान्य तथा वचन सामान्य में इनका प्रयोग होता है। चक्रे= "समुच्चये सामान्य वचन रूप" सूत्र से चक्रे का प्रयोग भूतकाल कर्तृकारक एकवचन अन्यपुरुष का बोध करवाता है।

**हिन्दी**—शक्तिमान उस रावण ने इन्द्र से विरोध करके उस इन्द्र की नगरी अमरावती को बार-बार घेरा, नन्दनवन को उजाड़ डाला, स्वर्गीय रत्नों को लूट लिया, और देवताओं की ललनाओं का अपहरण किया। इस प्रकार प्रतिदिन स्वर्ग में उपद्रव किया।

**अलङ्कार**—'समुच्चय' अलङ्कार है।

जब एक ही कर्त्ता का अनेक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध होता है तो समाहार लोट् लकार का विकल्प से प्रयोग होता है। इसी कारण यहाँ समुच्चय अलङ्कार है।

काव्यप्रकाश में लक्षण बताया गया है—

तत्सिद्धि हेतावेकास्मिन् यत्रान्यत्करणं भवेत्। समुच्चयोऽसौ" इति।

रावणभयेनेन्द्रस्यातिशयकौतरत्वं दर्शयति—

सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमोर्न चित्र मुच्चैः श्रवसः पदक्रमम्।
अनुद्रुतः संयति येन केवलं बलस्य शत्रुः प्रशशंसशीघ्रताम् ॥५२॥

**अन्वयः**—संयति येन अनुद्रूतः बलस्य शत्रुः अभ्रभोः भर्तुः सलीलयातानि न प्रशशंस, उच्चैश्रवसः चित्रं पदक्रमम् न, केवलं शीघ्रताम् एव (प्रशशंस)

**संस्कृतभावार्थः**—युद्धे रावणेन अनुधावितः बल नाम्नःदैत्यस्य शत्रुः इन्द्र ऐरावत सविलासगमननि न प्रशंसयामास, निजाश्वस्य नानाविधम् पदन्यास न श्लाधयामास, शीघ्रगमितामेवच प्रशंसयामास।

**व्याख्या**—संयति = युद्धे। येन = रावणेन। अनुद्रुतः = अनुधावितः। बलस्य = बलाख्यासुरस्य। शत्रुः = रिपुः, इन्द्र इत्यर्थः। अभ्रमोः = दिक्करिण्याः। भर्तुः = स्वामिनः। सलीलयातानि = लीलया सहितानि सलीलानि, सलीलानि च तानि यातानि, सलीयातानि = सभङ्कान् पदविन्यासान्। न प्रशशंस = न प्रशंसयामास। उच्चैश्रवसः = तन्नाम्नः स्वाश्वस्य। चित्रम् = नानाविधम्। पदक्रमम् = पदानां क्रमः पदक्रमस्तम् पदक्रमम् = पदन्यासम्। न प्रशंसयामास इति भावः। केवलं = एकमात्रम्। शीघ्रताम् = शीघ्रगतिमेव। प्रशंसयामास।

**कोशः**—संयति = "समुदायः स्त्रियां संयत्समित्याजिसभिद्युधः" इत्यमरः। अभ्रभोः "ऐरावतोऽभ्रमातङ्गो रावणाभ्रममुवल्ल्भाः"इत्यमरः। उच्चैश्रवसः = "हय उच्चैश्रवाः" इत्यमरः। चित्रम् = ''चित्रं किर्मीरकल्माषशवलैताश्च कबुरि"। "विस्मयोऽद्भुतनाश्चर्य चित्रम्"। "आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम्" इत्यमरः। केवलम् = "निर्णीति केवलमिति त्रिलिङ्गकृत्स्नयोः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—संयति = सम् + यम् + क्विप्। अनुद्रुतः = अनुपूर्वक गत्यर्थक द्रुधातु से कर्म में 'क्त' प्रत्यय होने पर अनुद्रुतः शब्द बनता है। प्रशशंस = प्र उपसर्ग पूर्वक शंस् धातु प्र + शंस + लिट्-तिप्-वाल्। शीघ्रताम् = शीघ्र + णल्।

**हिन्दी**—युद्ध में रावण के द्वारा पीछा किये जाते हुए बलनाम के असुर के शत्रु इन्द्र ने अपने हाथी (ऐरावत) की विलास पूर्ण गति की तथा अपने उच्चैश्रवा घोड़े की आश्चर्यमयी गति की प्रशंसा हीं की तात्पर्य यह है कि इन्द्र रावण के भय से शीघ्र ही भागकर बचना चाहता था। (ऐसा रावण नाम का राक्षस हुआ, यह पूर्व श्लोक के साथ अन्वय चल रहा है)

रावणभयात्पलान्तर्हितस्येन्द्रस्य उलूक सादृश्यमाह—

अशक्नुवन् सोदुमधीरलोचनः सहस्त्ररश्मेरिव यस्पस्य दर्शनम्।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं निनाय विभ्यद्दिवसानि कौशिकः ॥५३॥

**अन्वयः**—अधीरलोचनः कौशिकः सहस्त्ररश्मेः इव यस्य दर्शनम् सोदुम् अशक्नुवन् हेमाद्रिगुहागृहान्तरं प्रविश्य विभ्यत् दिवसानि निनाय। (सः रावणो नाम रक्षो वभूव)

**संस्कृतभावार्थः**—अस्थिर दृष्टिः उलूक इव इन्द्रः सूर्यस्य इव रावणस्य दर्शनं मर्षयितुम् असमर्थः सन् मेरुपर्वतकन्दराभवनमध्यं प्रविश्य भीतसन् दिवसानि यापयामास।

**व्याख्या**—अधीरलोचनः= अधीरे लोचने यस्य सः अधीरलोचनः= व्याकुलनेत्रः, अस्थिरदृष्टिः। कौशिकः= कुशिकस्य गोत्रापत्यं पुमान् कौशिकः= महेन्द्रः, उलूकश्च। सहस्त्ररश्मेः इव= सहस्त्रं रश्मयो यस्य सः सहस्त्ररश्मिस्तस्य सहस्त्ररश्मेः= सूर्यस्य, सहस्त्रांशोः। इव= यथा। यस्य= रावणस्य। दर्शनम्=बिलोकनम्, दृष्टिक्षेपणम्। सोदुम्= मर्षयितुम्। अशक्नुवन्= अपरायन्, असमर्थःसन्ह। हेमाद्रिगुहागृहान्तरम्= हेम्नः अद्रिः हेमादिः तस्यगुहा एव गृहम् हेमाद्रिगुहागृहम् तस्य अन्तरम् तत् हेमाद्रिगुहागृहान्तरम्= मेरुपर्वतकन्दरा निकेतनमध्यम्। प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा, अध्यास्य। विभ्यत्=भीतःसन्। दिवसानि=वासराणि, दिनानि वा। निनाय= यापयामास। अनेकार्थस्य कौशिक शब्दस्य प्रकरणेन महेन्द्ररूपेऽर्थे नियन्त्रिते सति व्यञ्जनमैव उलूकरुपो द्वितीयोऽर्थो बोध्यते।

**कोशः**—"लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी"इत्यमरः।
"महेन्द्र गुग्गुलूलूक व्यालग्राहिषु कौशिकः" इत्यमरः।
"मेरुः सुमेरुर्हेमाद्रि रत्नसानुः सुरालयः" इत्यमरः।

**व्याकरण**—दर्शनम्= दृश् धातु से भाव में ल्युट् प्रत्यय होकर दर्शनम् रूप बनता है। सोढुम्= सह् धातु से तुमुन् प्रत्यय होकर सोढुम् सह्+तुमुन् इस अवस्था में ह् को ढ तथा त को ध एवं ष्टुत्व होकर सुढ्+सुढुम् रहने पर पूर्व ढ् को लोप हो जाने के बाद "सहिवहीशेदवर्णस्य" सूत्र से स के अ को ओ होकर सोढुम् रूप बनता है। अशक्नुवन्= न शक्नुवन् अशक्नुवन्= शक्+शतृ+नुम्। विभ्यत्= भयार्थक 'भ' धातु से अभ्यस्त संज्ञा तथा द्वित्व होकर शतृ प्रत्यय होने के बाद विभ्यत् अभ्यस्त संज्ञा होने के कारण "नाभ्यस्ताच्छतु" सूत्र से नुमागम का निषेध हो जाता है।

**हिन्दी**—व्याकुल नेत्र वाले इन्द्र ने (अस्थिर नेत्र वाले उल्लू की भाँति) सूर्य के समान तेजस्वी जिस रावण को देखने में असमर्थ होते हुए सुमेरु पर्वत की गुफा रूपी घर में घुसकर डरते हुए दिन बिताये (वह रावण नाम का राक्षस हुआ)

**टिप्पणी**—दिन में जिस प्रकार उल्लू सूर्य के भय से बाहर नहीं निकलता है उसी तरह इन्द्र भी रावण के भय से बाहर न निकलकर सुमेरु पर्वत की भाँति घर में रहकर दिन बिताये।

**अलङ्कार**—उपमा अलङ्कार है।

इस श्लोक में 'कौशिक' शब्द श्लिष्ट होने से इन्द्र तथा उल्लू दो अर्थों को बताता है। इन्द्र को उल्लू से उपमा दी गई है, क्योंकि उल्लू भी सूर्य के भय से पर्वत कन्दरा में दिन बिताता है, उसी प्रकार इन्द्र भी रावण के भय से पर्वत कन्दराओं में दिन व्यतीत करता है। यहाँ कौशिक शब्द प्रकरण के अनुसार इन्द्र का वाचक है किन्तु व्यञ्जना से उलूक अर्थ को भी व्यक्त करता है। अतः शब्द शक्तिमूलक ध्वनि है। यह ध्वनि 'सहस्ररश्मेः इव' इस उपमान का निर्वाहक है। अतः वाच्यसिद्ध व्यङ्ग्य है।

विष्णोश्चक्रमपि रावणं प्रति विफलमिति दर्शयति—

बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनाद्विकीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विषः।
जगत्प्रभोरप्रसहिष्णु वैष्णवं न चक्रमस्याक्रमताधिकन्धरम् ॥५४॥

**अन्वयः**—बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात् विकीर्णलोलाग्निकणम् अप्रसहिष्णु वैष्णवं चक्रम् सुरद्विषः अस्य अधिकन्धरं न अक्रमत।

**संस्कृतभावार्थः**—महत्याषाण कठोर कण्ठ संघषर्णात् विक्षिप्तचञ्चलस्फुलिङ्गम् अतएव असमर्थ विष्णोः सुदर्शनं चक्रं रावणस्य कण्ठं न प्रावर्त्तत।

**व्याख्या**—बृहच्छिला निष्ठुर कण्ठघट्टनात्= बृहती चासौ शिला बृहाच्छिला, बृहच्छिला इव निष्ठुरः बृहाच्छिलानिष्ठुरः स चासौ कण्ठः तत्र घट्टनम् बृहच्छिलानिष्ठुर कण्ठ घट्टनम् तस्मात् बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात्= विशालपाषाण कठोर कण्ठघर्षणात्। विकीर्णलोलाग्निकणम्= लोलाश्च ते अग्निकणाः लोलाग्निकणः विकीर्णाः लोलाग्निकणाः यस्मात् येन वा तथोच्यम्-विकीर्णलोलाग्निकणम्= क्षिप्तचपलाग्निस्फुलिङ्गम्। अप्रसहिष्णु= सहते इति सहिष्णु, प्रकर्षेण सहिष्णु प्रसहिष्णु न प्रसहिष्णु अप्रसहिष्णु= असह्यम् अनभिभावकम्,। वैष्णवं= विष्णोः इदम् वैष्णवं= विष्णो सम्बन्धिनं। चक्रम्= सुदर्शनचक्रमिति अर्थः। जगत्प्रभोः= प्रभवति इति प्रभुः जगतां प्रभुः तस्य जगत्प्रभोः= लोकस्वामिनः। सुरद्विषः= सुरान्द्वेष्टि इति सुरद्विट् तस्य सुरद्विषः= सुरशत्रोः, देवरिपोः वा। अस्य= रावणस्य। अधिकन्धरम्= कन्धारायाम् अधि अधिकन्धरम्= अधिग्रीवम् न अक्रमत्= न प्रवर्त्तते स्म।

**कोशः**—शिला= "प्राषाण प्रस्तरग्रावोपलाश्मानः शिला दृषत् "इत्यमरः।
अग्निकणः= "त्रिसु स्फुलिङ्गऽग्निकणः"इत्यमरः।
चक्रम= "अथ चक्रं सुदर्शनम्" इत्यमरः। कन्धरः=
"कण्ठो गलोऽथ ग्रीवायां शिरोधिः कन्धरेत्यपि" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—बृहत्= वृह+शतृ "महद्बृहज्जगच्छतृवच्च" से निपात संज्ञा होकर वृहत् रूप बनता है। निष्ठुरः= नि उपसर्ग पूर्वक स्था धातु से औणादिक कुरंच् प्रत्यय होने पर "उपसर्गात् सुनोति" सूत्र से षत्व तथा ष्टुत्व होकर निष्ठुरः रूप सिद्ध होता है। विकीर्णः= वि उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्त प्रत्ययं होकर ऋत इत् "रपर" त को 'न'

एवम् णत्व होकर विकीर्ण सिद्ध हुआ। अप्रसहिष्णु = 'सह' धातु से "अलंकृञ्" सूत्र से 'इष्णुच्' प्रत्यय होने पर तथा प्र उपसर्ग एवम् नञ् समास करने पर अप्रसहिष्णु सिद्ध होता है। वैष्णवं = विष्णु + इदमथेऽण्। सुरद्विषः = सुर + द्विष् + क्विप्। अक्रमत = क्रम् धातु लुङ् लकार प्रथम पुरुष एक वचन में यह रूप बनता है। यहाँ पर "वृत्तिसर्गतायनेषुक्रमः" इस सूत्र से वृत्ति में आत्मनेपद हो गया।

**हिन्दी**—विशाल चट्टान के समान कठोर (रावण के) कण्ठ में चोट मारने से जिसमें से उज्ज्वल अग्निकण बिखर रहे हैं, तथा जो सम्पूर्ण विश्व को पराभूत करने वाला है, वह विष्णु का सुदर्शन चक्र, संसार के स्वामी, देवताओं के शत्रु रावण की गर्दन पर प्रभावी नहीं हो सका।

रावणस्य कुबेरविजयं दर्शयति—

विभिन्नशङ्खःकलुषीभवन्मुहुर्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः।
निरस्तगाम्भीर्यमपास्तपुष्पकं प्रकम्पयामास न मानसं न सः ॥५५॥

**अन्वयः**—सःमदेन दन्तीव विभिन्नशङ्खः कलुषीभवत् निरस्तगाम्भीर्यम् अपास्तपुष्पकम् मनुष्यधर्मणः मानसं मुहुः न प्रकम्पयामास (इति)।

**संस्कृतभावार्थः**—सः रावणः दर्पेण गज इव विनशितशंखनिधिः क्षोभं गच्छत् व्यपगतागाधत्वम्, निरस्तपुष्पकम् कुबेरस्य मानसं पुनःपुनः न क्षोभयामास इति न, अपितु प्रकम्पयामास एव इतिभावः।

**व्याख्या**—सः = रावणः। मदेन = गर्वेण, दर्पेण। दन्तिपक्षे-इभप्रदनेन। दन्ती = दन्ताः अस्य सन्ति इति दन्ती = हस्ति, गजः। इव = यथा। विभिन्नशंखः = विभिन्नः शंखः शंखनामा निधिः येनसः विभिन्नशंखः = विनाशित शंख निधिः। दन्तिपक्षे-विभिन्नाः शंखाः कम्बवः येन स विभिन्नशंखः = विघट्टितकम्बुः। कलुषीभवत् = न कलुषम् अकलुषम्, अकलुषं कलुषं भवत् कलुषीभवत् = क्षोभंगच्छत्। दन्तिपक्षे-मलिनी भवत्। निरस्त गाम्भीर्यम् = निरस्तं गाम्भीर्यम् यस्य तत् निरस्तगाम्भीर्यम् = निर्धूताविकारीत्वम् दन्तिपक्षे = व्ययगतागधत्वम्। अपास्त पुष्पकं = अपास्तं-पुष्पकं नामविमानं यस्मात् तत् अपास्तपुषकम् = अपगतपुष्पकं विभानं। दन्तिपक्षे = अपास्तानि पुष्पकानि कमलानि यस्मात् तत् अपास्तपुष्पकम् = निरस्तकमलम्। मनुष्यधर्मणः = मनुष्यस्य इव धर्म यस्यसः मनुष्य धर्मा तस्य् मनुष्यधर्मणः = कुबेरस्य। मानसं = चित्तम्, पक्षान्तरे मानसं नामकं सरोवरञ्च। मुहुः = पुनःपुनः। न प्रकम्पयामास = न क्षोभयामास इति न अपितु क्षोभयामास एव इति भावः।

**कोशः**—मदेन = "मदो दर्पेभदानयोः" इति विश्वः। शंख = "शंखो निध्यनतरे कम्बुललाटस्थितनखेषुच" इति विश्वः। "शंखोनिधौ ललाटस्थिकम्बौ" इत्यमरः। मनुष्यधर्मणः = "कुबेरस्त्रयश्रवक सखो यक्षराड् गुल्लकेश्वरः। मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो

धानधिपः" इत्यमरः। मानसं = "मानसं सरसिस्वान्ते" इति विश्वः। मुहु = "मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्ण मसकृत्समाः"इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—विभिन्नः = वि उपसर्ग पूर्वक 'भिद्' धातु के 'क्त' प्रत्यय तथा द् एवं त को न होकर विभिन्न रूप बनता है। कलुषीभवत् = कलुष् + च्वि + भू + शतृ। दन्ती = दन्त + इनिः। निरस्तं = निर् उपसर्ग पूर्वक अस् धातु से क्त प्रत्यय होकर निरस्तम् रूप बनता है। अपास्तपुष्पकम् = पुष्प + कप्। अप उपसर्गपूर्वक अस् धातु से क्त प्रत्यय होने से अपास्त रूप बनता है। मनुष्यधर्मणः = मनुष्यधर्म पूर्व पद रहते हुए "धर्मादनिच्केवलम्" सूत्र से अनिच् हो जाने पर धर्मन् रूप सिद्ध होता है जो षष्ठी एक वचने धर्मणः बनता है। प्रकम्पयामास = प्र + कम्प् + णिच् + लिट् तिप्-णल्।

**हिन्दी**—उस रावण ने अपने मद (अभिमान) हाथी के पक्ष में (मदजल) से शंख (शंखनामक निधि, पक्षान्तर में कम्बु) को तोड़ने वाले हाथी के समान उस रावण ने कलुषित (क्षोभ), पक्षान्तर में पंकिल करते हुए) एवं जिसकी गम्भीरता (कष्टादि सहनशक्ति, पक्षान्तर में गहराई) नष्ट हो गई है तथा जिससे पुष्पक विमान छीन लिया हो (पक्षान्तर में कमलादि फूल नष्ट कर दिये गये हैं) उस कुबेर के मन को (पक्षान्तर में मानसरोवर को) बार–बार नहीं प्रकम्पित किया हो ऐसा नहीं है अपितु बार–बार कम्पित किया है।

दूसरे शब्दों में—जिस प्रकार मदमस्त हाथी मानसरोवर के जल में प्रवेश कर अपने मदजल से सरोवर के जल को कलुषित कर देता है तथा वहाँ स्थित शंख और पुष्पों को नष्ट कर देता है उसी मदमस्त हाथी के समान रावण ने अपने अहंकार से कुबेर की शंख नामक निधि को नष्ट करके उसका पुष्पक विमान छीन लिया, तथा शान्त एवं गम्भीर चित्त वाले कुबेर के मानस को बार–बार क्षुब्ध किया।

**अलंकार**—श्लेषगर्भित पूर्णोपमा।

साहित्यदर्पण में लक्षण बताया है—

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैकम उपमाद्वयोः। सा पूर्णा यदि सामान्य धर्म औपायवाचि च। उपमेयं चोपमानंच भवेद्वाच्यम्।

रावणस्यवरुणविजयं दर्शयति—

रणेषु तस्य प्रहिताःप्रचेतसा सरोषहुङ्कारपराङ्मुखी कृताः।
प्रहर्त्तु रेवोरग राजरज्जवो जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे ॥५६ ॥

**अन्वयः**—रणेषु प्रचेतसा प्रहिताः उरगराजरज्जवः यस्य सरोष हुङ्कपराङ्मुखी कृताः (अतएव) सभयाःजवेन प्रहर्त्तुः एव कण्ठं प्रपेदिरे।

**संस्कृतभावार्थः**—युद्धेषु वरुणेन प्रयुक्ताः नागपाशाः रावणीय हुंकारेण परावर्त्तिताः अतएव सभयाः वेगेन वरुणस्यैव कण्ठं सम्प्राप्ताः।

**व्याख्या**—रणेषु = संग्रामेषु युद्धेषु वा। प्रचेतसा = प्रकृष्टं चेतः यस्य सः प्रचेताः तेन प्रचेतसा = वरुणेन। प्रहिताः = प्रयुक्ताः। उरगराजरज्जवः = उरसा गच्छन्तीतिउरगाः उरगागणां राजानः उरगराजाः ते एव रज्जवः उरगराजरज्जवः = नागपाशाः तस्य = रावणस्य सरोषहुंकार पराङ्मुखी कृताः = रोषेण सहितः सरोषः, सरोषश्चासौ हुङ्कारः सरोषहुङ्कारः, सरोषहुङ्कारेण पराङ्मुखीकृता इति सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः = सक्रोधहुंकारेण परावर्त्तिताः। सभयाः = भयेन सहिताः सभयाः = भययुक्ताः, भीता इत्यर्थः। जवेन = वेगेन। प्रहुर्तुः = प्रहार कर्न्तुः वरुणस्य एव। कण्ठं = गलप्रदेशम्। प्रप्रदिरे = सम्प्राप्ताः।

**कोश**—प्रचेतसा-"प्रचेता वरुणः पाशी यादसां पतिरप्पतिः"इत्यमरः।

उरगः = "उरगः पन्नगो भोगी जिह्मगः पवनाशनः" इत्यमरः।

सभयाः = "भीतिर्भी साध्वसं भयम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—प्रहिताः = प्र उपसर्ग पूर्वक गत्यर्थक हि धातु से कर्म में 'क्त' प्रत्यय होने पर प्रहिताः रूप बनता है। उरगः = उरस् पूर्वक गम् धातु से 'ड्' प्रत्यय होने पर उरगः सिद्ध होता है। पराङ्मुखीकृताः = पराङ् + मुख + च्वि + कृ + क्तः। प्रहर्तुः = प्र उपसर्ग पूर्वक हृ धातु से तृच् प्रत्यय होने पर प्रहर्तृ, षष्ठी के एक वचन में प्रहर्तुः रूप बनता है। प्रपेदिरे = प्र + पद + लिट् + झ + इरे।

**हिन्दी**—युद्धस्थल में वरुण के द्वारा छोड़े गये नागपाश उस रावण के क्रोधपूर्ण हुंकार से लौटकर भय के साथ प्रहारकर्त्ता वरुण के ही कण्ठ में आकर लिपट गये।

**अलंकार**—विषमालंकार

जहाँ दूसरे को अनर्थ पहुँचाने के लिए किया गया कार्य विरुद्ध हो जाता है वहाँ विषमालंकार होता है। यहाँ कवि ने बताया है कि रावण के विनाश के लिए छोड़े गये नागपाश लौटकर वरुण के गले में लौट आता है।

साहित्यदर्पण में विषमालंकार का लक्षण नीचे दिया जा रहा है—

"युद्धारब्धस्य वैफल्यमनर्थस्यच सम्भवः तद् विषमं मतम् ="। इति। "विरुद्धकार्यस्योत्पत्तिर्यत्रानर्थस्यवाभवेत्"।

रावणस्य यम विजयं दर्शयति—

परेतभर्त्तुर्महिषोऽमुना धनुर्विधातुमुतखातविषाणमण्डलः।
हतेऽपि भारे महतस्त्रपाभरादुवाह दुःखेन भृशानतं शिरः ॥५७॥

**अन्वयः**—अमुना धनुः विधातुम् उत्खातविषाणमण्डलः परेतभर्तुः महिषः भारे हते अपि महतः त्रपाभरात् भृशानतं शिरः दुःखेन उबाह।

**संस्कृतभावार्थः**—रावणेन चापं निर्मातुं उत्पाटितश्रृंगमण्डलः यमराजस्य वाहनभूतः महिषः विषाणमण्डलरूपभारे उत्सारितेऽपि लज्जया अत्यन्तानतं मस्तकम् क्लेशेन धारयतिस्म।

**व्याख्या**—अमुना= रावणेन। धनुः= चापम्। विधातुम्= निर्मातुम्। उत्खात विषाणमण्डलः= विषाणयोर्मण्डलम् विषाणमण्डलम् उत्खातं विषाणमण्डलम् यस्य सः उत्खातविषाणमण्डलः= उत्पाटितश्रृङ्गवलः। परेतभर्त्तुः= परेतानां भर्त्ता परेतभर्त्ता तस्य परेतभर्त्तुः= यमस्य। महिषः= यमराजस्य वाहनः। भारे= विषाणमण्डलरूपे भारे। हतेऽपि= दूरी कृतेऽपि। महतः= वृहतः। त्रपाभरा= त्रपा एव भरः त्रपाभरः तस्मात् त्रपाभरात्= लज्जाभरात्। भृशानतं= आसमन्तात् नतम् आनतम, भृशम् आनतन् भृशानतम् अत्यान्तानतम्, अत्यर्थनम्रम्। शिरः= मस्तकम्, मूर्धानम्। उवाह= वहतिस्म।

**कोशः**—धनु—" धनुश्चापौ धन्वशरासन कोदण्ड कार्मुकम्" इत्यमरः।

विषाणः-"विषाणं स्यात्पशुश्रृंगे"इत्यमरः। परेतभर्त्तुः= "धर्मराजः पितृपतिः समवर्ती परेतराड्। कृताने यमुनाभ्राता शमनो यमराड्यमः" इत्यमरः। महिषः= "महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः"इत्यमरः।

शिरः= "उत्तमाड्गं शिरःशीर्ष मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—विधातुम्= वि उपसर्ग 'धा' धातु तुमुन् प्रत्यय वि+धा+तुमुन्। उत्खातम्= उत् उपसर्ग खन् धातु क्त प्रत्यय उत्+खन्+क्त। भर्त्ता = धरणार्थक भृ धातु तृच् प्रत्यय भृ+तृच्। भारे= भृञ् धातु घञ् प्रत्यय। महतः= मह+अति प्रत्यय शतृवद्भावः। त्रपाभरात्= भृञ् धातु "ऋदोरप्" सूत्र से अप् प्रत्यय भरः। उवाह= वह् धातु, लिट् लकार आने पर "असंयोगात् लिट् कित्" सूत्र से कित् संज्ञा हो जाती है। कित् संज्ञा हो जाने पर "वचिस्वपयजादीनां किति" सूत्र से ण को उ सम्प्रसारण होकर 'उवाह' रूप सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—इस रावण के द्वारा धनुष निर्माण हेतु जिसके सींग उखाड़ लिये गये हैं, उस यमराज के भैंसे ने भार के दूर हो जाने पर भी मानो लज्जा के महान् भार से अत्यन्त झुके हुए सिर को कष्ट पूर्वक धारण किया।

**अलङ्कार**—'उत्प्रेक्षा'

यहाँ भार के दूर हो जाने पर सिर हल्का हो जाता है किन्तु यमराज के भैंसे के सींग उखाड़े जाने पर भी वह शिर को झुका कर ही चलता है। इसी कारण शिर झुकाने हेतु रूप लज्जारूपी भार की उत्प्रेक्षा की गई है। अतः यहा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

रावणस्य सूर्यविजयमाह—

स्पृशन् सशंकः समये शुचावपि स्थितः कराग्रैरसमग्रपातिभिः।<br>
अधर्मधर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैरलञ्चकारास्य वधूरहस्करः ॥५८॥

**अन्वयः**—अहस्करः शुचौ समये स्थितः अपि असमग्र पातिभिः करागैः सशङ्कः स्पृशन् अधर्मधर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैः अस्य वधूः अलञ्चकार।

**संस्कृतभावार्थः**—ग्रीष्मऋतौ अपि सूर्यः सभयः किरणैः संस्पृशन् शीतलस्वेदबिन्दुमुक्ताफलैः रावणस्य ललनाः अभूषयत्।

**व्याख्या**—अहस्करः= अहः करोतीति अहस्करः= दिनकरः= सूर्यश्चेति। शुचौसमये= ग्रीष्मऋतौ, ग्रीष्मकाले। स्थितःअपि= अवस्थितः अपि। असमग्रपातिभिः= न समग्रं असमग्रं यथा स्याततथा पतन्ति ये ते असमग्रपातिनः तैः असमग्रपातिभिः= असमस्तपतनशीलैः, संकुचितवृत्तिभिः। कराग्रैः कराणां अग्राः कराग्राः तैः कराग्रैः= रश्मिभिः, हस्ताग्रैः। सशंकः= शंकया सहितः सशङ्कः= भयाक्रान्तः। स्पृशन= आमृशन्। अधर्मधर्मोदक बिन्दुमौक्तिकैः= धर्मस्य उदकम् धर्मोदकम् तस्य बिन्दवः धर्मोदकबिन्दवः न धर्मा अधर्मा अधर्माश्च ते धर्मोदकबिन्दवः अधर्माधर्मोदकबिन्दवः ते एव मौक्तिकानि तैः अधर्मधर्मोदक बिन्दु मौक्तिकैः= शीतलस्वेदज बिन्दु मुक्ताफलैः। अस्य=रावणस्य। वधूः= ललनाः। अलञ्चकार= शोभायामास।

**कोशः**—अहस्करः= "भास्कराहस्करब्रह्म प्रभाकर विभाकरः=''इत्यमरः।

शुचौ= "शुचिः शुद्धेऽनुपहते श्रृंगाराषाढ़योरपि। ग्रीष्मे हुतवहेऽपि स्यात्" इति विश्वः। कराग्रैः= "बलि हस्तांशवः कराः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—अहस्करः-अहम् पूर्वक 'कृ' धातु "दिवाविभानिशा" सूत्र से 'ट' प्रत्यय होने पर "अहन्" सूत्र से अहन् के नकार को रुत्व तथा उ का लोप होने पर 'र' और "खरवसानयो विसर्जनीयः" सूत्र से 'र' को विसर्ग हो जाता है। विसर्ग हो जाने पर "अतः कृकमि कंस कुम्भपात्र" सूत्र से विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होकर अहस्करः रूप सिद्ध होता है। असमग्रपातिभिः= असमग्र उपपद पूर्वक पत् धातु ताच्छील्य अर्थ में णिनि प्रत्यय होकर तृतीया बहुवचन में असमग्रपातिभिः रूप बनता है। स्पृशन्= स्पृश् धातु से शतृ प्रत्यय होने पर प्रथम एकवचन में स्पृशन् रूप बनता है। अलञ्चकार= अलं+कृ+लिट्+तिप्+णल्।

**हिन्दी**—ग्रीष्मकाल में (पक्षान्तर-शुद्ध आचरण में) वर्तमान होता हुआ भी सूर्य सम्पूर्ण रूप से नहीं गिरने वाली अपनी किरणों के अग्रभाग से (पक्षान्तर-हाथों के अग्रभाग से) डरते हुए स्पर्श करता हुआ इस रावण की स्त्रियों को शीतल स्वेदबिन्दु रूप मोतियों से सुसज्जित करता था।

**टिप्पणी**—जिस प्रकार प्रसाधक शुद्ध आचरण होता हुआ भी रानियों को राजा के भय से अच्छी तरह हाथ बढ़ाकर नहीं छूते हुए मोतियों से सजाता है। उसी प्रकार आषाढ़ मास में स्थित भी सूर्य रावण के भय से अपनी सम्पूर्ण किरणों से उसकी रानियों को स्पृश नहीं करता था, किन्तु थोड़ा ही ताप देता था, जिससे रावण की सुकुमारी स्त्रियों

के मुखादि पर मोतियों के समान पसीने की बुन्दें उन्हें शोभित कर देती थीं। सारांश यह है कि रावण के भय से सूर्य आषाढ़ माह में भी अधिक गर्मी नहीं करता था।

**अलङ्कार**—'समासोक्ति' यहाँ प्रस्तुत सूर्य की समान विशेषणों से अप्रस्तुत प्रसाधक की प्रतीति होने से समसोक्ति अलंकार है। काव्य प्रकाशानुसार "परोक्तिभैदकैः श्लिष्टैः समसोक्ति' इति।

रावणस्य चन्द्रविजयमाह—

कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा।
विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं न नर्म साचिव्यमकारि नेन्दुना ॥५९॥

**अन्वयः**—कलासमग्रेण गृहान् अमुञ्चता मनस्विनीः उत्कायितुम् पटीयसा, रतिंवितन्वता इन्दुना बिलासिनः तस्य नर्मसाचित्वं अकारि (इति) न।

**संस्कृतभावार्थः**—सम्पूर्णकलायुनेन चन्द्रेण रावणस्यगृहेषुनिवसता, मानिनीः सोत्सुकाः कर्त्तुम् चतुरेण रावणस्य सुरतानुरागम् बर्द्धयता विलासिनः तस्य सुरतक्रीड़ा सचिवत्वम् न कृतम् इति न अपितु कृतमेव इति भावः।

**व्याख्या**—कलासमग्रेण= कलाभिः समग्रः कलासमग्रः, तेन कलासमग्रेण= कलाभिः षोडशांशैः सम्पूर्णेन, पक्षान्तरे सकलकामकलाकुशलेन। गृहान्= रावणभवनानि। अमुञ्चता= अपरित्यजता। पक्षान्तरे सदागृहेस्वेव निवसता। मनस्विनीः= प्रशस्तं मनः यासां ताः मानस्विनीः= मानिनीः। उत्कायितुम्= उत्काः उत्सुकाः कर्त्तुम्= उत्कण्ठयितुम् पटीयसा= चतुरेण, मानिनी मानभङ्गदक्षेण। रतिम्= सुरतानुरागम्। वितन्वता= विस्तारयता (एकत्र-रावणस्य, अपरत्र- स्वामिनः) इन्दुना चन्द्रमसा। (एकत्र- चन्द्रिकाभिः , अपरत्र- चतुरोक्तिभिः) विलासिनः= विलसितुं शीलमस्य विलासी तस्य विलसिनः= श्रृंगार प्रियस्य। तस्य= रावणस्य। नर्मसाचिव्यम्= सचिम् वाति गच्छतीति सचिवः नर्माणि सचिवः, नर्मसचिवः नर्मसचिवस्य भाव कर्मवा नर्मसचिवव्यम्= सुरतक्रीड़ा सचिवत्वम्। न अकारि= न कृतम्। इति न। अपितु कृतमेवेति भावः। अत्र प्रकृतस्येन्दोरप्रकृते न नर्मसचिवेन श्लेष। नर्मसचिवः पीठमर्दक एव। तल्लक्षणं यथा—

"सेवाऽभिज्ञः कलादक्षः शुचिवेश्मरतः सदा।
स्यान्नर्मसचिवस्तस्य कुपित स्त्रीप्रसादकः॥इति

**कोशः**—कला समग्रेण-"काले शिल्पे वित्तवृद्धो चन्द्रांशे कलने कला" इति वैजयन्ती। इन्दुना= "हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः" इत्यमरः। नर्मसचिव्यम्= "क्रीड़ा लीलाचनर्म च" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—अमुञ्चता= न + मुञ्च् + शतृ= अमुञ्चत् तृतीया एकवचन में अमुञ्चता। उत्कयितुम्= उत्क शब्द से "उत्क उन्मना" सूत्र से नियातनात् उत्क शब्द से "तत्करोति" गणसूत्र से ण्यन्तात् तुमुन् प्रत्यय होकर उत्कयितुम् रूप बना है।

मनस्विनीः = मनस् + विनिः। पटीयसा = पटु + ईयसुन्। वितन्वता = वि + तनु + शतृ। साचिव्यम् = सचिव + ब्रह्मणादित्वात् ष्यय् प्रत्यय। अकारि = कृ + कर्माणि लुङ्।

हिन्दी कलाओ (१६ कलाओं, पक्षान्तर-सम्पूर्ण ६४ काम कलाओं) से परिपूर्ण उस रावण के घर को नहीं छोड़ते हुए तथा मानिनी स्त्रियों को (उनका मान दूर करके पतियों से मिलने के लिए) उत्कण्ठित करने में निपुण (अपनी चन्द्रिका से, पक्षान्तर-चतुरतापूर्ण उक्तियों से) प्रेम वृद्धि करते हुए चन्द्रमा ने उस विलासी रावण का नर्मसचिव (सुरत क्रीड़ा में सहायक) का कार्य नहीं किया, ऐसा नहीं अपितु किया ही।

रावणस्य गणेशविजयं दर्शयति—

विदग्धलीलोचितदन्त पत्रिकाविधित्सया नूनमनेन मानिना।
न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति ॥६०॥

**अन्वयः**—मानिना अनेन विदग्धलीलोचितदन्त पत्रिका विधित्सया नूनं जातु उद्धृतं वैनायकम् एकं विषाणं अन्धापिः पुनः न प्ररोहति।

**संस्कृतभावार्थः**—दर्पिणा रावणेन विलासिनीविलासयोग्यदन्तपत्रकानिर्मातुं कदाचित् उत्खातम् गणेशस्य एकं दन्तः इदानीमपि न आविर्भवति।

**व्याख्या**—मानिना = मानः अस्य अस्तीमानी तेन मानिना = अभिमानिना, अहंकारिणा। अनेन = रावणेन। विदग्धलीलोचितदन्त पत्रिका विधत्सया = विदग्धाः लीलाः यासां ताः विदग्धलीलाः अथवा विदग्धानां विदग्धलीलाः तासामुचिताः विदग्धलीलोचिताः, विदग्धलीलोचिताश्च ताः दन्तपत्रिकाश्च विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाः, विधातुमिच्छा विधित्सा विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाणां या विधित्सातया विदग्धलीलोचित दन्त पत्रिका विधित्सया = चतुर विलासिनी विलासयोग्य दन्तपत्रिका विधातुमिच्छया। नूनम् = निश्चितम्। जातु = कदाचित्। उद्धृतम् = उत्पादितम्, उत्खातम् वा। वैनायकम् = विनयति, अपाकरोति विघ्नानिति विनायकः, विनायकस्येंद वैनायकम = राणेशसम्बन्धि, गाणपतम्। एकं = अद्वितीयम्, एकतरम्। विसाणं = दन्तः। अद्यापि = इद्रानीम्, बहुकालेगतेऽपि इत्यर्थः। पुनः = भूयः। न प्ररोहति = न प्रादुर्भवति।

**कोशः**—जातु-"कदाचिज्जातु"इत्यमरः। विषाणम् = "विषाणं स्यात् पशुश्रृंगेभदन्तयोः" इत्यमरः। "विषाणं पशुश्रृंगे स्यात् क्रीड़ा द्विरददन्तयोः इति विश्वः।

**व्याकरणम्**—मानिना = मान + इनि प्रत्यय। विधित्सया = वि उपसर्ग पूर्वक धा धातु "सनिमीमा" सूत्र से अच् के स्थान पर इस् हो जाता है फिर सन् प्रत्यय होने से वि + धा + इस् + सन् तब "साः सि" से स् के स्थान पर त हो जाता है, यहाँ पर "लोपोभ्यासस्य" सूत्र से अभ्यास का लोप हो जाने के बाद "स्त्रियाम् सूत्र की अनुवृत्ति

होने पर "अ प्रत्ययात्" सूत्र से अप्रत्यय हो जाता है और स्त्रीत्व विवक्षा में "अजाद्यतष्टाप्" सूत्र से टाप् होकर विधित्सा, तृतीया एक वचन में विधित्सया रूप होता है। उद्धृतम् = उत् उपसर्ग धृ धातु, कर्मा में क्त प्रत्यय होने पर उद्धृतम् रूप बनता है। वैनायकम् = विनायक + अण्। प्ररोहति = प्र + रुह + लट् + तिप्।

**हिन्दी**—अभिमानी इस रावण द्वारा कामकला में निपुण ललनाओं के केश-प्रसाधन हेतु दन्तपत्रिका (कंघी) निर्माण की इच्छा से उखाड़ा गया गणेश जी का एक दाँत आज तक भी नहीं उगा है।

**टिप्पणी**—प्राचीन आख्यानों के अनुसार परशुरामजी से युद्ध में गणेशजी का एक दाँत टूट गया था। तभी से गणेश जी एक दन्त कहलाये। इस श्लोक में कवि की कल्पना मात्र है।

**अलङ्कार**—उत्प्रेक्षा

इस श्लोक में कवि उत्प्रेक्षा करता है मानो रावण ने विलासिनी स्त्रियों के लिए कर्णाभूषण या कंघी बनाने के लिए गणेशजी का दाँत उखाड़ दिया था। इसलिए यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

**विशेष**—दन्तपत्रिका के अर्थ भिन्न-भिन्न टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न दिये हैं, जैसे वल्लभदेव ने "दन्तपत्रलता अथवा कर्णाभूषणाविशेष किया है। मल्लिनाथ ने "कर्णाभूषणानि" किया है। किन्तु दन्तपत्रिका का अर्थ कंघी भी होता है, और हाथी दाँत की कंघी श्रेष्ठ होती है इसलिए कंघी अर्थ उपयुक्त प्रतीत होता है।

रावणस्य वायुवशीकारमाह—

निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसाप्यूरुषु लोलचक्षुषः।
प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः ॥६१॥

**अवन्यः**—निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसा अपि ऊरुषु लोलचक्षुषः तस्य प्रियेण प्रकम्पनेन अनपराधबाधिताः सुराः अनुचकम्पिरे।

**संस्कृतभावार्थः**—अन्तपुरललनावस्त्रप्रकम्पनेन सुपष्टापराधवतीऽपि जंघासु लोलुपनेत्रस्य रावणस्य प्रियकारिण वायुना अपराधाभावेऽपि पीड़िता देवाः अनुकम्पिताः।

**व्याख्या**—निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसा = निशान्ते नार्यः निशान्तनार्यः तासां परिधानानि निशान्त नारीपरिधानानि तेषां धूननं निशान्तनारी परिधानधूननं तेन स्फुट आगो यस्य सः, तेन निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसा = अन्तःपुर विलासिनीवस्त्रचालनस्पष्टापराधवतापि। ऊरुषु = ललनाललितजंघासु, लोलचक्षुषः = लोलेचक्षुषी यस्य सः लोलचक्षुः तस्य लोलाचक्षुषः = सतृष्णनेत्रस्य। तस्य = रावणस्य। प्रियेण = कृपापात्रेण। प्रकम्पनेन = वायुना, प्रभञ्जनेन। अनपराधबाधिताः = नास्ति अपराधं येषां ते अनपराधाः ते च ते बाधिताः अनपराधबाधिताः = अपराधाभावेऽपिक्लेशिताः। सुराः = देवाः, अभराः वा। अनुचकम्पिरे = अनुकम्पिताः।

**कोशः**—"निशान्त" गृहशान्तयोः" इति विश्वः। "अन्तरीयोपसंख्यान परिधानान्यधोंशुके"इत्यमरः। "आगोऽपराधो मन्तुश्च" पापापराधयोरागः" इत्यमरः। "सक्थिक्लीवे पुमानूरुः इत्यमरः। "लोलेश्चलसतृष्णयोः"इत्यमरः। "प्रकम्पनो महावातः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—परिधानम् = परि उपसर्ग पूर्वक 'धा' धातु ल्युट् प्रत्यय होकर परिधानम् रूप बनता है। घूनन = घूञ् कम्पने धातु से ल्युट् प्रत्यय तथा "घूपूप्रीजोर्नुग्वक्तत्यः" वार्त्तिक से नुक् का आगम होकर घुनन रूप बनता है। प्रकम्पनेन = प्र उपसर्ग कम्प् धातु से ल्युट् प्रत्यय होकर प्रकम्पन उसके तृतीया विभक्ति के एक वचन प्रकम्पनेन बनता है। अनुचकम्पिरे = अनु उपसर्ग कम्प् धातु से लिट्-झ-इरेच् इस प्रकार अनुचकम्पिरे सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—अन्तपुर ललनाओं के वस्त्र उड़ाने के कारण स्पष्ट अपराध वाले भी स्त्रियों की नग्नजंघाओं को देखने के लिए ललचायी आँख वाले रावण के प्रिय वायु के द्वारा बिना अपराध के पीड़ित देवता अनुगृहीत किये गये।

रावणस्यग्निविजयमाह—

तिरस्कृतस्तस्य जनाभिभाविना मुहुर्महिम्ना महसां महीयसाम्।
बभार वाष्पैर्द्विगुणीकृतं तनुस्तनूनपाद्धूमवितानमाधिजैः ॥६२॥

**अन्वयः**—तस्य जनाभिभाविना महीयसाम् महसाम् महिम्ना मुहुः तिरस्कृतः तनुः तनूनपात् आधिजैः द्विगुणीकृतम् धूमवितानम् बभार।

**संस्कृतभावार्थः**—रावणस्य लोकतिरस्कारिणा महतां तेजसां प्रभावेण पुनःपुनः पराभूतः अग्निः मानसव्यथोत्पन्नैः निश्वासोष्मभिः द्विगुणतां नीतं धूमपुञ्जम् धारयामास।

**व्याख्या**—तस्य = रावणस्य। जनाभिभाविना = जनमभिभवतीति जनाभिभावी तेन जनाभिभाविना = लोकतिरस्कारिणा। महीयसाम् = अतिशयेन महान्ति महीयांसि, तेषां महीयसाम् = अतिमहताम्। महसाम् = तेजसाम्। महिम्ना = महतः भावः महिमा तेन महिम्ना = गौरवेण। मुहुः = पुनः पुनः। तिरस्कृतः = अपमानितः, पराभूतः। तनुः कृशः। तनूनपात् = तनुं न पातयति इति तनूनपात् = अग्निः। (जाठररूपेण शरीरं धारपति) आधिजैः = आधीयते दुःखम् अनेन इति आधिः, आधेः जाता आधिजास्तै आधिजैः = मनोव्यथोत्पन्नैः। वाष्पैः = निश्वासोष्मवारिभिः, अश्रुभिः इत्यर्थः। द्विगुणीकृतम् = द्वौ गुणौ अस्येति द्विगुणम्, अद्विगुणं द्विगुणं सम्पद्यमानं कृतम् द्विगुणी कृतम् = द्विगुणतांनीतम्, घनीभूतम्। धूमवितानम् = धूमस्य वितानाम् धूमवितानं = धूमपुञ्जम्। बभार = धारयामास।

**कोशः**—महसाम्-"महस्तूत्सवतेजसोः" इत्यमरः। तिरस्कृतः = "अनादरः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया" इत्यमरः। तनुः-"सूक्ष्मं द्रभं कृशं तनुः" इत्यमरः।

तनूनपात्-"अग्निर्वैश्वानरो वह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जयः कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनून पात्" इत्यमरः।

वाष्पैः- "वाष्पोनेत्रजलाष्मणोः" इत्यमरः। आधिजैः- "पुंस्याधिः मानसी व्यथा" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—जनाभिभविना-जनभि + भू धातु ताच्छीला अर्थ में णिनि प्रत्यय होकर जनभिभाविन् तृतीया एक वचन में जनाभिभाविना। महीयसाम्-महत् शब्द ईयसुन् प्रत्यय होकर महीयस् जो षष्ठी विभक्ति बहुवचन में महीयसाम् बनता है। महिम्ना= महत् शब्द से "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वाः" सूत्र से इमनिच् प्रत्यय होकर महिमन् शब्द बनता है जो तृतीया विभक्ति में महिम्ना रूप बन जाता है। तनूनपात्= "न भ्राण्नपात्" सूत्र से न का लोप नहीं होता, इसलिए तनुनपात् सिद्ध होता है।

आधिजैः—आङ् उपसर्ग 'धा' धातु "उपसर्गे धोः कि" सूत्र से कि प्रत्यय होकर आधिः रूप बनता है। द्विगुणीकृतम् द्वि + गुण + च्वि + कृ + क्तः। बभार-भू + लिट् + तिप् + णल्।

**हिन्दी**—उस रावण का समपूर्ण लोकों का तिरस्कार करने वाले तथा अत्यन्त तेज की महिमा से बार-बार तिरस्कृत होकर कृश अग्नि ने मानसिक दुःखों के कारण उत्पन्न हुए आंसुओं से दुगने धूमसमूह को धारण किया।

**अलङ्कार**—'सम्बन्धातिशयोक्ति'

यहाँ द्विगुण सम्बन्ध के अभाव में भी उसका सम्बन्ध कथन से सम्बन्धतिशयोक्ति अलंकार है। कुवलयानन्द के अनुसार "सम्बन्धतिशयोक्तिः स्यादयोगे योगकल्पनम्" इति।

रावणस्य नागलोकविजयं वर्णयति—

परस्य मर्माविधमुज्झतां निजं द्विजिह्वतादोषमजिह्वा गामिभिः।
तमिद्धमाराधयितुं सकर्ण कैः कुलैर्न भेजे मणिनां भुजङ्गता ॥६३॥

**अन्वयः**—इद्धम् तम् आराधमितुं परस्य मर्माविधम् निजं द्विजिह्वतादोषम् उज्झतां फणिनाम् अमिह्वागामिभिः सकर्णकैः कुलैः भुजङ्गता न भेजे।

**संस्कृतभावार्थः**—उग्रं रावणं आराधयितुं, जनान्तरस्य हृदयादिमर्मस्थलपीड़कम स्वकीयं सर्पत्वम् त्यजताम् सर्पाणाम् सरलगतिभिः चक्षुश्रवत्वं विहाय भुजङ्गतादोषं न सिषेवे, अपितु त्यक्त एव।

**व्याख्या**—इद्धम्= प्रदीप्तम्, उग्रम् इत्यर्थः। तम्= रावणम्। आराधयितुं= सेवितुम्। परस्य= जनान्तस्य, अन्यस्येति। मर्माविधम्= मर्माणि विध्यतीति मर्मावित् तं मर्माविधम्= मर्मवेधकम्, हृदयदिमर्मस्थलपीड़कम्। सूचक पक्षे-कुलाचारादि भेदकम्, परदोषोद्घाटनेन परमपीड़कम्। निजम्= स्वकीयम्। द्विजिह्वतादोषम्= द्वे जिह्वे स्तो येषां ते द्विजिह्वाः तेषा भाव द्विजिह्वता तस्याः यो दोषः तं द्विजिह्वता दोषम्=

दशनात्मकं सर्पत्वदोषम् दृष्टि विषत्वादिकं वा। सूचक पक्षे= पिशुनता रूप दोषम्। उज्झताम्= त्यजताम्। फणिनाम्= फणा सन्ति येषां ते फणिनस्तेषां फणिनाम्= सर्पाणाम्। अजिह्मगामिभिः= जिह्मं गच्छन्तीति जिह्म गामिनः, न जिह्म गामिनः अजिह्मगामिनः तैः अजिह्मगामिभिः= सरलगातिभिः, सूचकपक्षे= अकपटचारिभिः। सकर्ण कैः= कर्णाभ्यां सह वर्त्तन्ते इति सकर्णकास्तैः सकर्ण कैः= चक्षुश्रवत्वं विहाय आविष्कृत करणैरित्यर्थ, सूचकपक्षे= सनियाम कैः। कुलै= = समूहैः। भुजङ्गता= भुजेन कौटिल्येन गच्छति इति भुजङ्गः;भुजङ्गस्य भावः भुजङ्गता= सर्पत्वम्, सुचकपक्षे= कुटिलत्वम्। नभेजे= न सिषेवे, किन्तु त्यक्तै वा इत्यर्थ।

**कोश**:—"द्विजिह्वौ सर्पसूचकौ" इत्यमरः। "भुजङ्गविट सर्पयोः" इति हलायुधः।

**व्याकरणम्**—मर्माविधम्= मर्म उपपद पूर्वक 'व्यध्' धातु से क्विप् प्रत्यय होकर तथा सर्वापहारी लोप होकर मर्म+व्यध्+क्विप् इस अवस्था में "ग्रहिज्या." सूत्र से य के स्थान पर इकार सप्रासरण होकर मर्मविध् रूप हुआ "नहिवृत्ति" सूत्र से मर्म शब्द के मकारोत्तरवर्त्ति अकार को दीर्घत्वेन आकार आदेश होकर मर्माविध् द्वितीया एक वचन में मर्माविधम् रूप सिद्ध हुआ। उज्झाताम्= उज्झ धातु से कर्त्ता में क्त प्रत्यय होने पर उज्झत् शब्द बना जो षष्ठी बहुवचन में उज्झताम् रूप बना। इद्धम= इन्धी+कर्त्तरिक्तः। आङ् उपसर्ग 'राध्' धातु से णिच् प्रत्यय होने पर तुमुन् प्रत्यय होकर आराधयितुम् रूप बनता है। अजिह्मगामिभिः= अजिह्मपूर्वक गम् धातु से णिनि-प्रत्यय, तृतीया बहु वचन में अगिह्मगाामिभिः भुजङ्गता भुज् पूर्वक गम् धातु से "खच्च डिद्वा वाच्यः" वार्त्तिकसे खच् प्रत्यय तथा डित् हो जाता है तब खच् को मुम् का आगम और ङित् होने पर गम् के अन् का भाग लोप होने पर भुजङ्ग रूप से भाव में तल् प्रत्यय तथा टाप् होने पर भुजङ्गता रूप सिद्ध होता है। भेजे—भज+लिट्+कर्मणि त एश

**हिन्दी**—उग्र स्वभाव वाले उस रावण की सेवा करने के लिए दूसरों का मर्म भेदन (ह्रदय आदि मर्मस्थल को डसना, अन्य पक्ष में कुलाचरादि को नष्ट करना) करने वाले, अपने द्विजिह्वता रुपी दोष (सर्पदोष, अन्यपक्ष में-चुगलखोरी) को छोड़ने वाले सर्प समूहों ने सीधी चाल चलकर (अन्यपक्ष में-कपट रहित होकर) और कानयुक्त बनकर (अर्थात् आँखों से सुनने की आदत छोड़कर, अन्य पक्ष में- नियन्त्रण में रहकर) अपनी भुजङ्गताही (अन्यपक्ष में कुटिलता ही) छोड़ दी।

**अलङ्कार**—समासोक्ति

यहाँ प्रस्तुत सर्प के श्लिष्ट विशेषणों द्वारा अप्रस्तुत खल व्यवहार की प्रतीति दर्शाई गई है, अतः समासोक्ति अलंकार है। जैसे—सर्पपक्ष में—उस उग्र स्वभाव वाले रावण की सेवा के लिए साँपों ने दूसरों के मर्मभेदन करने वाले अपने द्विजिह्वता दोष को छोड़

दिया है तथा अपनी टेढ़ी चाल को छोड़कर सीधा चलना अपना लिया है तथा रावण का आदेश सुनकर उसे पालन करने के लिए चक्षुश्रवत्व छोड़कर कानों को धारण कर, अपनी सर्पताही छोड़ दी है।

खल पक्ष में—उस उग्रस्वभाव वाले रावण को प्रसन्न करने के लिए दुष्टों ने कुलाचार को नष्ट करने वाले छिद्रान्वेषण तथा चुगलखोरी आदि दोष त्याग दिये है। कपट भाव को छोड़कर सीधे चलने लगे हैं और नियन्त्रण में रहकर अपनी दुष्टताही छोड़ दी है।

रावणस्य सकलभुवन विजयमाह—

तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः कटस्थल प्रोषितदानवारिभिः।
गृहीत दिक्कैरपुनर्निवर्तिभिश्चिराय याथार्थ्यमलम्भि दिग्गजैः ॥६४॥

**अन्वयः**—तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः कटस्थप्रोषितदानवारिभिः गृहीतदिक्कैः अपुनार्निवार्तिभिः दिग्गजैः चिराय याथार्थ्यम् अलम्भि।

**संस्कृतभावार्थः**—रावणस्य कुंजरपंक्तिप्रेरितैः अतएव गण्डस्थलापगतभदैः आश्रितदिग्भिः, पुनरागमन रहितैः दिग्गजैः कल्पान्तंयावत् दिग्गजा इति नाम्नः सार्थकत्वम् प्राप्तम्।

**व्याख्या**—तदीयमातङ्गघटाघट्टितैः= तस्य इमे तदीयाः तदीयाश्च ते मातङ्गः तदोयमातङ्गः तेषां या घटाः ताभिः विघह्वितास्तैः तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः= रावणहस्ति पंक्तिप्रेरितैः= रावणगजसमूहाभिहतैः। कटस्थप्रोषित दानवारिभिः= कटस्थलेभ्यः प्रोषितानि दानवारीणि येषां ते तैः कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः= गण्डस्थलापगतमदजलैः। गृहीतदिक्कैः= गृहीताः दिशः यैःतैः गृहीतदिक्कैः= आश्रितदिग्भिः, पलाम्य गृहीतदिगन्तैरित्यर्थः। अपुनर्निवर्तिभिः= पुनरागमन वर्जितैः (न पुन र्निवर्तन्ते इति अपुनर्निवर्तिन= तैः अपुनर्निवर्तिभिः) दिग्जैः= दिशाकरिभिः, ऐरावतादिभिः। चिराय= चिरकालर्थम् प्रलयान्तं यावत्। यार्थार्थ्यम्= अर्थमतिक्रम्य यथार्थः ययार्थस्य भावः याथार्थ्यम्= अन्वर्थत्वम्, दिक्षुस्थितागजा दिग्गजा इतिनाम्नः सार्थकत्वम्। अलम्भि= लब्धम्।

**कोशः**—मतङ्गमातङ्गगजो नागः कुञ्जरोवारणः करी" इत्यमरः।

घटा—"गजानां घटना घटा" इत्यमरः। दानववारिभिः= "गण्डः कटो मदोदानम्"इत्यमरः। दिग्गजानां नामानि= "ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः" इत्यमरः। **चिराय**—"चिराय चिरमात्राम चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—तदीय= तत् शब्द से "वृद्धाच्छः" सूत्र से छ प्रत्यय तथा ईम् आदेश होकर तदीय रूप बनता है। विघटित-वि उपसर्ग घट्ट धातु से क्त प्रत्यय होकर विघट्टित शब्द सम्पन्न होता है। गृहीतदिक्कैः= गृहीत उपपद पूर्वक दिश् शब्द से

"शेषाद्विभाषा" सूत्र से कप् प्रत्यय होकर दिक्कः तथा तृतीया बहुवचन में गृहीत दिक्कैः रूप निष्पन्न होता है। अपुनर्निवर्तिभिः= न पुनर् पूर्वक नि उपसर्ग 'वृत्त' धातु से णिनि प्रत्यय होकर निवर्तिन् तथा तृतीया बहुवचन में निवर्तिभिः= शब्द बनता है। याथार्थ्यम्= 'यथार्थ + अर्शादित्वान्मत्वथेऽच् ततः ष्यज् प्रत्यय होकर याथार्थ्यम् रुप बनता है। अलम्भिलभेर्ण्यन्तात् कर्मणि लुङ् "विभाषा चिण्मुसोः" सूत्र से विकल्प से नुमागम् होकर अलम्भि रूप सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—रावण के गजसमूह से पराभूत अतएव जिनके गण्डस्थल से मद-जल दूर हो गया है तथा जिन्होंने अपनी दिशाओं को ग्रहण कर लिया है और जो (रावण के हाथियों के भय से) पुनः नहीं लौटे, उन दिग्गजों ने चिरकाल तक (दिग्गज नाम की) यथार्थता को प्राप्त किया।

**टिप्पणी**—पुराण के अनुसार आठों दिशाओं में रहने वाले आठ दिग्गज माने जाते हैं, उनके नाम एवं दिशायें निम्नप्रकार हैं—

पूर्व दिशा का दिग्गज ऐरावत, पूर्व दक्षिण का कोना आग्नेय का पुण्डरीक, दक्षिण का वामन, दक्षिण पश्चिम का कोना नैत्रऋत्य का कुमुद, पश्चिम का अञ्जन, पश्चिमोत्तर का कोना वायव्य का पुष्पदन्त तथा उत्तर का सार्वभौम और उत्तर पूर्व का कोना ईशान का सुप्रतीक कहा जाता है।

रावणस्य सुराङ्गनाविलासमाह—

अभीक्ष्णमुष्णैरपि तस्य सोष्मणः सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैर्यथा।
सचन्दनाम्भः कणकोमलैस्तथा वपुर्जलाद्रापवनैर्न निर्ववौ ॥६५॥

**अन्वयः**—सोष्मण तस्य वपुः अभीक्ष्णम् उष्णैः अपि सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैः यथा निर्वतौ तथा सचन्दनाम्भः कण कोमलैः जलाद्रापवनैः न निर्ववौ।

**संस्कृतभावार्थः**—कामज्वरपीड़ितस्य रावणस्य शरीरं अत्यन्तसंतप्तैरपि सुरेन्द्रबन्दी भूतसुन्दरीनिश्वासैः यथा शान्तिमवाप तथा जलोक्षित तालवृन्त वायुभिः न आनन्दं लेभे।

**व्याख्या**—सोष्मणः= उष्मणा सहितः सोष्मा तस्य सोष्मणः= स्मरज्वरयुक्तस्य। तस्य= रावणस्य। वपुः= कायः, शरीरम् वा। अभीक्ष्णम्= अत्यन्तम्, भृशम्। उष्णैः= तप्तैः अपि। सुरेन्द्र बन्दीश्वसितानिलैः= सुराणां इन्द्रः सुरेन्द्रः, सुरेन्द्रस्य बन्द्यः सुरेन्द्रबन्द्यः तासांश्वसितस्य अनिलाः सुरेन्द्रबन्दीश्र्वसितानिलास्तैः सुरेन्द्रबन्दीश्र्वसितानिलैः= इन्द्रबन्दीभूतसुन्दरीनिश्र्वासपवनैः, अप्सरसां श्वासपवनैः इत्यर्थः। यथा= यादृशम्। निर्ववौ= शान्तिमाप। तथा तादृशम्। सचन्दनाम्भःकणकोमलैः= अम्भसां कणाः अम्भःकणाः चन्दनैः सहिताः सचन्दनाः अतएव कोमलाः सचन्दनाम्भःकणकोमलाः तैः सचन्दनाम्भः कणकोमलैः= चन्दनसहितमृदुजलबिन्दुभिः। जलाद्रापवनैः= जलेन आर्द्राः जलार्द्राः, जलर्द्राणाम्

पवनाः जलार्द्रापवनास्तै जलार्द्रपवनैः= वारिसिंचिततालवृन्तवायुभिः। न निर्ववौ= न आनन्दमाप।

**कोशः**—"निर्वाणं निर्वृतौ मोक्षे" इति वैजयन्ती। जलार्द्राः= "जलेनार्द्रं जलार्द्रा स्यात्" इति वैजयन्ती। जलम्= "आपः स्त्री भूम्नि वार्वारिसलिलं कमलं जलम्"इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—निर्ववौ= निर्+वा+लिट्-तिप्-णल्।

**हिन्दी**—कामज्वर से गर्म उस रावण का शरीर अत्यन्त गर्म होते हुए भी, कारागार में बन्दी इन्द्र की अंगनाओं के उष्ण श्वास वायु से जितना आनन्दित हुआ, उतना चन्दनयुक्त कोमल जल कणों से सिक्त पंखे की हवा से नहीं हुआ।

**अलङ्कार**—विषमालङ्कार

जहाँ कारण के विरुद्ध कार्य की उत्पत्ति देखी जाती है वहाँ विषम अलङ्कार होता है। इस श्लोक मे कामज्वर से गर्म रावण के शरीर को सुर लालनाओं के गर्म निश्वास से शान्ति प्राप्त होना बताया है। इसलिए यहाँ विषम अलंकार है। कुवलयानन्द के अनुसार लक्षण इस प्रकार है—

"विरूपकार्यस्योत्पत्तिरपरं विषमं मतम्" इति।

रावणस्यकालविजयमाह—

तपेन वर्षाःशरदा हिमागमो वसन्तलक्ष्म्या शिशिरः समेत्यच।
प्रसूनक्लृप्तिं दधतः सदर्तवः पुरेऽस्य वास्तव्य कुटुम्बितां ययुः॥६६॥

**अन्वयः**—सदा प्रसून्क्लृप्तिं दधतः ऋतवः वर्षाः तपेन, हिमागमः शरदा, शिशिरः वसन्तलक्ष्मया च समेत्य अस्य पुरे वास्तव्य कुटुम्बितां ययुः।

**संस्कृतभावार्थः**—सर्वदैव पुष्पसम्पत्तिं धारयन्त ऋतवः, वर्षा ग्रीष्मेण, हेमन्तः शरदृतुना, शिशिरः वसन्तश्रिया सह रावणस्य पुरे (लंकायाम्) प्रतिवासित्वं प्रापुः।

**व्याख्या**—सदाः नित्यम्, न तु यथाकालमित्यर्थः। प्रसूनक्लृप्तिम्= प्रसूनानां क्लृप्तिः प्रसूक्लृप्तिस्वां प्रसूनक्लृप्तिम्= कुसुमसमृद्धिम्। दधतः= धारयन्तः, विभ्रतः। क्वचित् "प्रसूनक्लृप्तं ददतः" इति पाठस्तत्र प्रसूनं= पुष्पफलंतदेव क्लृप्तं= भाटकं, ददतः= ददानाः। ऋतवः= वसन्तादयः षड्ऋतवः। वर्षाः= पावसऋतुः स्त्री। तपेन= ग्रीष्मेण पुंसा। हिमागमः= हिमस्यागमः यस्मिन् सः हिमागमः= हेमन्तः। शरदा= शरदृतुना नार्यासह इत्यर्थः। शिशिरः= शिशिरर्तुः पुमान् भर्त्ता इतिभावः। वसन्तलक्ष्म्याः= वसन्तस्य लक्ष्मीः वसन्तलक्ष्मीः तया वसन्तलक्ष्मया= वसन्तश्रिया पत्न्यासह इत्यर्थः। चेति समुच्चये। अस्य= रावणस्य। पुरे= नगरे लंकायामित्यर्थः। वास्तव्य कुटुम्बितां= वसन्तीति वास्तव्याः कुटुम्बानि सन्ति येषां ते कुटुम्बिनः, वास्तव्याश्च कुटुम्बिनश्च वास्तव्य कुटुम्बिनः तेषांभावः वास्तव्यकुटुम्बिता ताम् वास्तव्यकुटुम्बिताम्= प्रतिवासित्वम्। ययुः= जग्मुः।

**कोशः**—"स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्" इत्यमरः।

तपेन-"उष्ण ऊष्मागमस्तपः"इत्यमरः। वर्षा-"स्त्रियां प्रावृट् स्त्रियां भूम्नि वर्षा अथ शरतिस्त्रियाम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—क्लृप्तिम् = क्लृप् धातु से भाव में क्तिन् प्रत्यय होकर क्लृप्ति द्वितीया के एकवचन में क्लृप्तिम्। दधतः = धारणार्थक 'धा' धातु शतृ प्रत्यय दधत्, प्रथमा बहुवचन में दधतः रूप बनता है। "अभ्यस्तत्वान्नुभभावः" वर्तिक से नुम् का अभाव होने से दधतः ही रूप सिद्ध होता है।

वास्तव्यः वस् धातु से णिच् तथा "वसेस्तव्यत्कर्त्तरि णिच्च" वार्त्तिक से तव्यत् प्रत्यय होकर वास्तव्य बनता है।

ययुः = या (गमनार्थक) धातु लिट्-झ-उस् = या + लिट् + झ + उस्।

**हिन्दी**—सदैव पुष्पसमृद्धि से पूर्ण ऋतुएँ वर्षा ग्रीष्म के साथ, हेमन्त शरद् के साथ तथा शिशिर वसन्त श्री के साथ मिलकर रावण की नगरी लंका में कुटुम्बी बनकर (दाम्पत्य भाव से) रहने लगी।

**टिप्पणी**—यहाँ माघ कवि ने दो–दो ऋतुओं के मिलने का वर्णन किया है। इसमें से एक अर्थात् कोमल कान्तिवाली ऋतु (वर्षा, शरद् वसन्त) का वाचक शब्द स्त्रीलिंङ्ग में प्रयोग किया है तथा द्वितीय प्रचण्ड ऋतु (ग्रीष्म, हेमन्त, शिशिर) का वाचक शब्द पुल्लिङ्ग, में प्रयोग किया है। इससे दाम्पत्य भाव प्रकट होता है।

**अलङ्कार**—सम्बन्धातिशयोक्ति (अतिशयोक्ति)

यहाँ कवि ने एक साथ सम्पूर्ण ऋतुओं को कहकर असम्बन्ध में सम्बन्ध का वर्णन किया है इसलिए यहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार है।

"स चासन्नमृत्युः तुभ्यमपिः सन्द्रूहय त्वयैव हतः" इति वक्तुकामः प्रथमं तस्य रामदारापहारकत्वं दर्शयति—

**अमानवं जातमजं कुलेमनोः प्रभाविनं भाविनमन्तभात्मनः।**
**मुमोच जानन्नपि जानकीं नयः सदाभिमानैकधनाः हि मानिनः ॥६७॥**

**अन्वयः**—अमानवं अजं मनोः कुले जातं प्रभाविनं (भवन्तम्) आत्मनः अन्तं भाविनं जानन् अपि यः जानकीं न मुमोच, हि मानिनः सदा अभिमानैकधनाः भवन्ति।

**संस्कृतभावार्थः**—मानवेतरं, नित्यं, मनोःकुले उत्पन्नं (रामरूपेणावतीर्णम्) महाप्रभावशालिनं भवतां, स्वस्य विनाशं जानन्नपि सीतां न तत्याज। यतः मानवन्तः सदैव मृत्यावपि प्राप्ते मानं न त्यजन्ति।

**व्याख्या**—अमानवम् = मनोरपत्यं पुमान् मानवः, न मानवः आमानवः तम् आमानवम् = अमानुषम्, मनुष्यभिन्नम्। अजम् = न जायते इति अजस्तम् अजम् = अजन्मानम्, शाश्वतम्। मनोः = मनुनामकस्य राजर्षेः। कुले = वंशे, सूर्यवंशे इत्यर्थः।

जातम् = समुत्पन्नम्। प्रभाविनम् = प्रवृष्टोभाव: प्रभाव: प्रभाव अस्यास्तीति प्रभावी तम् प्रभाविनम् = रामचन्द्ररूपेणावतीर्णम्, एतत विरुद्धं = यो हिजात: स कथमजो भवेत्? यश्च मनुवंशे उत्पन्न: स: कथममानव:? इति विरोधं समापतति। अतएवाह-प्रभाव शालीनम्। महाप्रभावें तस्मिन्न कश्चिद्विरोध: इतिभाव:। भवन्तमितिशेष:। आत्मन: = स्वस्य, रावणस्य इति अर्थ:। अन्तम् = विनाशम्। भाविनं: भविष्यन्तम्, भवितारं। जानन् अपि = त्वत्तो अवगच्छन् अपि। जानकीम् = जनकस्यायत्पयं स्त्री जानकीताम् जानकीम् = सीताम्,। भवत्पत्नीम् इत्यर्थ:। न मुमोच = न तत्याज। हि = यत:। मानिन: = मानं अस्यास्तीतिमानी ते मानिन: = मानवन्त:। अभिभानैकधना: = अभिमान एव एकं धनं येषां ते अभिमानैक धना: = अहंकारमात्रसारा:। भवन्तीतिशेष:।

**कोश:**—"मानश्चिन्त समुन्नति:" इत्यमर:। "गर्वोऽभिमानोऽहंकार:" इत्यमर:।

**व्याकरणम्**—मानवम् = मनु शब्द से "तस्येदम्" सूत्र से अण् प्रत्यय होकर मानव: द्वितीया एकवचन में मानवम् रूप बनता है। अजम् = जनि धातु से "अन्येष्वपिदृश्यते" सूत्र से ङ् प्रत्यय तथा नञ् समास होकर द्वितीया के एकवचन में अजम् सिद्ध होता है। प्रभाविनम् = प्र उपसर्ग "भू" धातु से घञ् प्रत्यय अथवा अभीक्ष्णेणिनी प्रत्यय होकर द्वितीया एकवचन में प्रभाविनं रूप सिद्ध होता है। जानन् = ज्ञा धातु शतृ प्रत्यय। जानकीम् = अण् प्रत्यय तथा ङीप् होकर द्वितीया एक वचन में जानकीम्। मुमोच = मुच् + लिट् + तिप्-णल्।

**हिन्दी**—मानव से भिन्न, अजन्मा (होते हुए मनुष्य रूप में) मनु के कुल में जन्म लेने वाले, अत्यन्त प्रभावशील आपको अपना मारने वाला जानते हुए भी जिस रावण ने सीता को नहीं छोड़ा। क्योंकि मानी पुरुषों का अभिमान ही मुख्य धन होता है।

**अलङ्कार**—अर्थान्तरन्यास—

यहाँ कारण से कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरस्यास अलंकार है। साहित्यदर्पण के अनुसार लक्षण दिया गया है—

"सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेनवा यदि। कार्यच कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते। साधर्म्येणेतरणार्थान्तरन्यासोऽष्टधामत:॥ इति

रावणस्य रामावतारे कृतम् वधं वर्णयति—

स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन् भवानमुं वनान्ताद् वनितापहारिणम्।
पयोधिमाबद्धचलज्जलाबिलं विलंघ्य लकां निकषा हनिष्यति॥ ६८॥

**अन्वय:**—भवान् दाशरथि: भवन् वनान्तात् वनितापहारिणम् अमुम् आबद्धचलज्जलाविलं पयोधिं त्रिलङ्ध्य लकां निकषा हनिष्यति अद: स्मरति किम्।

**संस्कृतभावार्थ:**—भवान् राम: सन् दण्डकारण्यात् सीतापहर्त्तारं रावणं सेतुंबध्वा सागरं उल्लंध्य लंकासमीपे अवधीत्। एतत् स्मरति किम् भवान्।

**संस्कृतभावार्थः**—भवान् रामः सन् दण्डकारण्यात् सीतापहर्त्तारं रावणं सेतुंबध्वा सागरं उल्लंध्य लंकासमीपे अवधीत्। एतत् स्मरति किम् भवान्।

**व्याख्या**—भवान् = त्वम्। दाशरथिः = दशरथस्यापत्यम् पुमान् दाशरथिः = दशरथसुतो रामः। भवन् = सन्। वनान्तात् = कान्तारमध्यात्, दण्डकाण्रयमध्यादिति भावः। (वनस्यान्तः वनान्तः तस्मात् वनान्तात्)। वनितापहरिणम् = वनिताम् अपहरति इति वनितापहारी तम् वनितापहारिणम् = सीतामपहर्तारम्। अमुम् = रावणम्। आबद्ध चलज्जलाविलम् = चलन्ति जलानि यस्य सः चलज्जलः, आबद्धश्र्च चलज्जलश्चेति आबद्धचलज्जलः स चासौ आविलश्च आबद्धचलज्जलाविलस्तम् आबद्धचलज्जलाविलम् = बद्धसेतुत्वाच्चलज्जलमलिनम्। आबद्धचलज्ज्लविलामिति पाठे पर्वतन्यासोत्क्षुभितचंचलजलकलुष मित्यर्थः। पयोधिम् = पयांसि धीयन्ते अस्मिन्नति पयोधिः तम् पयोधिम् = जलधिम् सागरम् वा। विलङ्ध्य = समुत्तार्य। लंकाम् निकषा = लंकासमीपे। हनिष्यति = अवधीत्। अदः = एतत् हननम्। स्मरति किम् = अभिजानाति किम्।

**कोशः**—वनान्तात्-"अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्" इत्यमरः। अन्तः-"मध्येऽन्तररात्मनिच" इत्यमरः। पयोधिम् = "समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिः। उदन्वानुदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णवः। रत्नाकरो जलनिधि यदि पति रपां पतिः" इत्यमरः। निकषाः "समयानिकषाब्दौ च समीप्ये त्वव्यये मतौ" इति हलायुयः। "कलुषोऽनच्छ आविलः" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**--भवान् = भा धातु डवतु प्रत्यय होकर भवत् प्रथमाविभक्ति के एकवचन में भवान् रूप बनता है। दाशरथिः = दशरथ शब्द से "अत इञ्" सूत्र से इञ् प्रत्यय होकर प्रथमा विभक्ति में एकवचन में दाशरथिः रूप बनता है। वनितापहारिणम् = वन् धातु से क्त प्रत्यय स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् होकर वनिता रूप निष्पन्न होता है। पयोधिम् = पयस् पूर्वाद् 'धा' धातु से कर्मण्यधिकरणे च" सूत्र कि प्रत्यय होकर पयोधि रूप बनता है। द्वितीया विभक्ति एकवचन में पयोधिम्। विलड्ध्य = वि उपसर्ग पूर्वक लड्घ धातु से क्त्वा प्रत्यय तथा उपसर्ग पूर्व होने से क्त्वा के स्थान पर ल्यप् प्रत्यय होकर विलड्ध्य रूप बनता है। निकषा = निकषा अव्यय शब्द है। उसका योग रहने पर "अभितः परितः समया निकषा हा प्रतियोगीऽपि " इस वाचिक से लंका शब्द में द्वितीया विभक्ति आई है। हनिष्यति = हन् धातु से "अभिज्ञानवचने लृट् सूत्र से लृट् होकर भविष्यत् काल में हनिष्यति रूप बना।

**हिन्दी**—आपने दशरथ पुत्र होते हुए, वन से अपनी पत्नी सीता का अपहरण करने वाले इस रावण को, पुल बाँधने से चञ्चल तथा मलिन जल वाले सागर को लाँघकर लंका के समीप मारा था। यह स्मरण करते हैं क्या?

एव शिशुपाल रावण एवेति नटदृष्टान्तेन समर्थयति—

अथोपपतिं छलनापरोऽपराभवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्।
तिरोहितात्मा शिशुपाल संज्ञया प्रतीयतेसम्प्रति सोऽषयसः परैः ॥६९॥

**अन्वयः**—अथ सम्प्रति छलनापरः एषः शैलूषः भूमिकाम् इव अपराम् उपपत्तिम् अवाप्य शिशुपालसंज्ञया तिरोहितात्मा (सन्) सः अपि परैः असः प्रतीयते।

**संस्कृतभावार्थः**—रावणदेहत्यागान्तरं इदानीम् वञ्चनाप्रधान एष रावणः नटः रूपान्तरमिव अन्यं उपपत्तिं प्राप्य शिशुपालनाम्ना तिरोहितस्वरूपः सन् लोकैः तद्भिन्न एव आभासते।

**व्याख्या**—अथ= अन्यस्मिन् जन्माने, रावणतनुत्यागानन्तर मित्यर्थः। सम्प्रति= अधुना। छलनापरः= छलनायां परः तत्परः= छलनापरः= छलनाप्रधानः। एषः= रावणः। शैलूषः= नटः। भूमिकाम्= पात्रान्तरम्, रूपान्तरम्। इव= यथा। अपराम्= अन्याम्। उपपत्तिम्= जन्मान्तरम्, रूपमित्यर्थः। अवाप्य= गृहीत्वा, प्राप्य वा। शिशुपालसंज्ञया= संज्ञायते अनया इति संज्ञा, शिशुपाल इति या संज्ञा, तया शिशुपालसंज्ञया= शिशुपाल इति नाम्ना। तिरोहितात्मा= तिरोहितः आत्मा येन सः तिरोहतात्मा= प्रच्छन्नस्वरूपः सन्, आच्छन्न देहः सन्, सः अपि= रावण एव सन्नपि। परैः= अन्यैः। असः= तद्भिन्न एव। प्रतीयते= आभासते।

**कोशः**—सम्प्रति= "एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा"इत्यमरः।
शैलूषः="शैलूषोनटाभिल्लयोः" इति विश्वः। "शैलूषः जायाजीवः"इत्यमरः। भूमिकाम्= "भूमिका रचनायां स्यान्मूर्त्यन्तरपरिग्रहे" इति विश्वः।

**व्याकरणम्**—शैलूषः शिलुषस्यापत्यं पुमान् शैलूषः। शिलूष शब्द से अण् प्रत्यय होकर शैलूष शब्द बना है। अवाप्य= अव् उपसर्ग क्त्वा प्रत्यय तथा उसके स्थान पर पूर्व उपसर्ग होने से ल्यय् प्रत्यय होकर अवाप्य रूप बना है। संज्ञया = सम् उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु से अङ् प्रत्यय होकर संज्ञा, तृतीया एक वचन में संज्ञया रूप बना है। असः नसः "नञ्" सूत्र से नम् समास होकर असः शब्द बना है। प्रतीयते= प्रति + इ + कर्मणिलट्-त।

**हिन्दी**—इसके बाद (रावण को देह त्यागने के बाद) दूसरों को धोखा देने में तत्पर वह (रावण) रूप परिवर्तन करने वाले नट की भाँति दूसरे जन्म को पाकर इस समय शिशुपाल के नाम से अपने स्वरूप को छिपाये हुए, रावण होते हुए भी दूसरे लोगों को अन्य ही प्रतीत होता है।

शिशुपाल स्वरूपमाह—

स बाल आसीत् वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूणेन्दुनिभस्त्रिलोचनः।
युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकै रसंशयं सम्प्रति तेजसा रविः ॥७०॥

**अन्वयः**—सः बालः (सन्) वपुषा चतुर्भुजः आसीत् मुखेन पूर्णेन्दुनिभः (आसीत्) त्रिलोचनः (आसीत्) सम्प्रति युवा सः कराक्रान्तमहीभृत् उच्चकैः तेजसा असंशयं रविः (अग्नि)।

**संस्कृतभावार्थः**—शिशुपालः बाल्यावस्थायां शरीरेण चतुर्भुजः आसीत्, मुखेन पूर्णचन्द्र सदृशः त्रिनेत्रश्चातीत्। इदानीम् तरुणः सन् सः करदीकृतभूपालः महता तेजसा निश्चितं रवि एवास्ति।

**व्याख्या**—सः= शिशुपालः। बालः सन्= शिशुरेव, शैशवावस्थाया मित्यर्थः। वपुषा= शरीरेण। चतुर्भुजः= चत्वारः भुजा यस्य सः चतुर्भुजः= चतुर्बाहुः, चतुस्करः वा। आसीत्। मुखेन= वदनेन। पूर्णेन्दुनिभः= पूर्णश्र्चासौ इन्दुश्च पूर्णेन्दुः पूर्णेन्दुना निभः, पूर्णेन्दुनिभः= पूर्णचन्द्रतुल्यः। त्रिलोचनः= त्रीणि लोचननि यस्य सः त्रिलोचनः= त्रिचक्षु त्रिनेत्र वा। आसीत्। बाल इति विशेषणात् सम्प्रति तत्सर्व तिरोहितमिति भावः। सम्प्रति= अधुना, इदानीम्। युवा= तरुणः। सन्। सः= शिशुपालः। कराक्रान्तमहीभृत्= महीं विभ्रति यः सः महीभृत ते महीभृतः, करैः आक्रन्ताः महीभृतः येन सः कराक्रान्तमहीभृत्= करदीकृत राजकः, दण्डपराभूतमहीश्वरः। सूर्यपक्षे- रश्मिव्याप्तभूधरः। उच्चकैः= अतिमहता। तेजसा= प्रतापेन। सूर्यपक्षे= तापेन। असंशयम्= अविद्यानः संशयः यस्मिन् तत् असंशयम्= निश्र्चितम्। रविः= सूर्य एव अस्तीत्यर्थः।

**कोशः**—वपुषा= "गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः" इत्यमरः।
युवा= "वयस्थस्तरुणो युवा" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—वपुषा-वपुष् शब्द षकारान्त नपुंसक लिङ्ग संज्ञा है। यह तृतीया विभक्ति एक वचन का रूप है क्योंकि "येनाङ्गविकारः" सूत्र तृतीया विभक्ति हो गई है। हानि के समान आधिक्य को भी वामन ने विकार माना है "हानिवदाधिक्यमपि अंगविकारः" इति। महीभृत्= मही उपपद भृ धातु से क्विप् प्रत्यय होकर तुक् का आगम होकर महीभृत् रूप सिद्ध होता है। आसीत् अस् धातु लङ्-तिप्+इट्। तेजा-तेजस् शब्द के तृतीया एक वचन में यह रूप बनता है। "प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानाम्" वार्त्तिक से तृतीया विभक्ति आती है।

**हिन्दी**—वह शिशुपाल शैशवावस्था में शरीर से चार भुजाओं वाला, मुख से पूर्ण चन्द्रमा के समान, तथा तीन नेत्रों वाला था। इस समय युवावस्था में करों (राजस्व आदि, सूर्यपक्ष में-किरणों) से राजाओं को पक्षान्तर में पर्वतों को आक्रान्त कर महान् तेज से निश्र्चित ही सूर्य है।

**टिप्पणी**—यहाँ शिशुपाल को चतुर्भुज= विष्णु, शब्द से, इन्दु-चन्द्रमा शब्द से, त्रिलोचन-शिव शब्द से तथा रवि-सूर्य शब्द से विशेषित किया गया है। इससे शिशुपाल का सर्व देवभयत्व प्रकट होता है।

शिशुपाल के जन्म के विषय में भागवत पुराण में कहा है—

"शिशुपालः पुरा जातस्त्रिनेत्रश्र्चचतुर्भुजः।
पितरौ चाऽथ तं दृष्टवा हातुं वै चक्रतुर्मतिम्॥

उच्चचाराथ नभसि वागेवमशरीरिणी।
नैष त्याज्यो महाराज। श्रीमान् वीरो भविष्यति।
स चैष वध को भावी यं दृष्टवा निपतिष्यतः।
बाहुनेत्रं च सहसा तद् बुद्ध्वा पाल्यतामयम्॥

**अलंकार**—उत्प्रेक्षा, उपमा, संसृष्टि।

यहाँ कराक्रान्त महीभृत् शब्द में श्लेषगर्भित उत्प्रेक्षा। पूर्णेन्दुनिभःशब्द में उपमा, तथा दोनों में संसृष्टि अलंकार है।

शिशुपालस्याद्वितीय पराक्रममाह—

स्वयं विधाता सुरदैत्यरक्षसामनुग्रहावग्रहयोर्यदृच्छया।
दशाननादीनभिराद्ध देवताविर्तीणवीर्यातिशयान् हसत्यसौ ॥७१ ॥

**अन्वय**—यदृच्छया स्वयम् सुरदैत्यरक्षसाम् अनुग्रहावग्रहयोः विधाता असौ अभिराद्ध देवता वितीर्णवीर्यातिशयान् दशाननादीन् हसति।

**संस्कृतभावार्थः**—स्वेच्छया स्वयं देवदानवराक्षसानाम् प्रसाददण्डयोर्विधाता शिशुपालः अर्चित देवता प्रदत्त प्रभावान् रावणादीन् उपहसति।

**व्याख्या**—यदृच्छया= स्वेच्छया, स्वसामर्थ्येन न तु देवता-प्रसाद बलादितिभावः। स्वयम्= आत्मना एव। सुरदैत्यरक्षसाम्= सुराश्र्च दैत्याश्च रक्षांसि चेति सुरदैत्यरक्षांसि तेषाम्-सुरदैत्यरक्षसाम्= देवदानवराक्षसानाम्। अनुग्रहावग्रहयोः= अनुग्रहश्र्च अवग्रहश्र्च अनुग्रहावग्रहो तयोः अनुग्रहावग्रहयोः= प्रसादनिग्रहयोः। विधाता= कर्त्ता, विधायकः। असौ= शिशुपालः। अभिराद्ध वितीर्णवीर्यातिशयान्= अभिराद्धाः देवताः अभिराद्धदेवताः ताभिः देवताभिः वितीर्णः वीर्यातिशयः येभ्यः अभिराद्ध देवताविर्तीण वीर्यातिशयास्तान्, अभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान्= पूजित देवता प्रदत्तप्रबलराक्रमान्। दशाननादीन्= दश आननानि मुखानि यस्य सः दशाननः स आदि प्रमुखः येषां ते दशाननादयः तान् दशाननादीन्= रावण हिरण्यकर्शिवादीन्। हसति= उपहसति।

**कोशः**—यदृच्छया-" स्वेच्छा यदृच्छा स्वच्छन्दः स्वैरता चेति ताः समाः" इत्यमरः। "असुरा दैत्य दैतेयदनु जेन्द्रारिदानवाः"इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—विधाता-वि उपसर्ग 'धा' धातु से तृच् प्रत्यय होकर विधातृ, प्रथमा विभक्ति एक वचन में विधाता शब्द बना है।

**हिन्दी**—अपनी इच्छा (सामर्थ्य) से स्वयं देवताओं, दैत्यों तथा राक्षसों पर कृपा तथा दण्ड देने वाला वह शिशुपाल, देवताओं को प्रसन्न करके (वरदान स्वरूप) पराक्रम प्राप्त करने वाले रावणादि का उपहास करता है।

**टिप्पणी**—सुर, दैत्य एवं राक्षस ये तीन भिन्न माने जाते हैं। सुर-दक्ष की पुत्री अदिति तथा कश्यप की सन्तान कहे जाते हैं। दैत्य-दक्ष की पुत्री दिति से कश्यप की सन्तान कहे जाते हैं। राक्षस-दक्ष की पुत्री खशा से कश्यप की सन्तान कहे जाते हैं।

**अलंकार**—काव्यलिङ्ग

विशेषणों द्वारा रावणादिकों के प्रति हँसने का कारण ध्वनित होता है, अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है।

शिशुपालस्य संसारपीड़कत्वमाह—

बलावलेपादधुनाऽपि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥७२॥

**अन्वय**—जिगीषुणातेन बलावलेपात् अधुना अपि पूर्ववत् जगत् प्रबाध्यते। सती योषित् इव सुनिश्चला प्रकृतिः भवान्तरेषु अपि पुनांसम् अभ्येति।

**संस्कृतभावार्थः**—विजयेच्छुः सः शिशुपालः बलदर्पात् इदानीमपि जगत् पीडयति। तथाहि पतिव्रता नारीव स्थिरा प्रकृतिः जन्मान्तरेषु अपि पुरुषं उपैति।

**व्याख्या**—जिगीषुणा= विजयेच्छुना, नित्योत्साहपूर्णेन। तेन= शिशुपालेन। बलावलेपात्= बलस्य अवलेपः बलावलेपस्तस्मात्, बलावलेपात्= शक्तिगर्वात्। अधुना= सम्प्रति अपि। पूर्ववत्= पूर्वजन्मनि इव। जगत्= लोकम्। प्रबाध्यते= क्लेशायते। सती= पतिव्रता। योषिदिव= नारीव, स्त्रीवत्। सुनिश्चला= स्थिरा। प्रकृतिः= स्वभावः। भवान्तरेष्वपि= अन्ये भवाः भवान्तराणि तेषु भवान्तरेषु= जन्मान्तरेष्वपि। पुंम्रसम्= पुरुषम्। अभ्येति= अन्वेति, प्राप्नोति इति अर्थः। भगवता मनुना कथितम्—

"पतिं या नाभिचरित मनोवाक्काय संयता।
सा भर्तुलौकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥" इति।

**कोशः**—"दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भः" इत्यमरः। अधुना-"एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा" इत्यमरः। योषित्= "स्त्री योषिदवला योषा नारी सीमान्तिनी वधूः। प्रतीपदर्शिनी वामावनिता महिला तथा" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—जिगीषुणा—जि+सन् "सनाशंसभिक्षः सूत्र से उः प्रत्यय होकर जिगीषुः शब्द बनता है, तृतीया एक वचन में जिगीषुणा रूप बनता है। पूर्ववत्= पूर्व शब्द से "तेन तुल्यं क्रिया चेद्वति" सूत्र सेवंति प्रत्यय होकर पूर्ववत् रूप बनता है। प्रबाध्यते= प्र उपसर्गपूर्वक बाध् धातु से कर्म में लट् तथा त होकर प्रबाध्यते रूप बनता है। अभ्येति—अभि उपसर्ग पूर्वक इ+लट् तदनन्तर तिप् प्रत्यय होकर अभ्येति सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—विजय की इच्छा वाले उस शिशुपाल के द्वारा बल के गर्व से इस समय पहले की (रावण जन्म की) ही भाँति संसार को पीड़ित किया जा रहा है। (क्योंकि) पतिव्रता नारी की तरह स्थिर स्वभाव जन्मान्तरों में भी पुरुष को प्राप्त करता है।

**अलंकार**—उपमा, अर्थान्तरन्यास

(१) यहाँ 'योषित् इव' शब्द में उपमा है।

(२) कथित सामान्य अर्थ के द्वारा विशेषार्थ का समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

**अथ फलितमाह**—

तदेनमुल्लाङ्घितशासनं विधेर्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम्।
शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो निपातनीयाः हि सतामसाधवः ॥७३॥

**अन्वय**—तत् विधेः उल्लाङ्घितशासनम् एनं कीनाशनिकेतनातिथिम् विधेहि। हि शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः असाधवः सताम् निपातनीयाः।

**संस्कृतभावार्थः**—तस्मात् कारणात् विधातुः अतिक्रान्ताज्ञम् शिशुपालं व्यापादय। स्वाशुभाचारप्राप्तविपत्तयः दुष्टाः सतां मारणीया एव।

**व्याख्या**—तत्= तस्मात् कारणात्। विधेः= विधातुः, ब्रह्मणः। उल्लाङ्घित शासनम्= उल्लाङ्घितं शासनं येन सः उल्लांघितशासनः तम् उल्लाङ्घितशासनं= अतिक्रान्तदैवादेशम्। एनम्= शिशुपालम्। कीनाशनिकेतनातिथिम्= कीनाशस्य निकेतनम् कीनाशनिकेतनम् तस्य अतिथिः कीनाशनिकेतनाऽतिथिः तम् कीनाशनिकेतनातिथिम्= यमराजगृहाभ्यागतम्। विधेहि= कुरु, मारयेत्यर्थः। हि= यतः। शुभेतराचारविपक्त्रिमापदः= शुभात् इतरः शुभेतरः, शुभेतरश्चासौ आचारश्च शुभेतराचारः, विपाकेन निवृत्ताः विपक्त्रिमाः, शुभेतराचारेण विपक्त्रिमाः, आपदो येषां ते शुभेतराचार विपक्त्रिमापदः= स्वाशुभाचार परिप्राप्तविपत्तयः, दुराचारपरिपक्वापदः। असाधवः= न साधु असाधुस्ते असाधवः= दुष्टाः, असज्जनाः वा। सताम्= श्रेष्ठजनानाम्। निपातनीयाः= वध्यः, मारणीयाः वा।

**कोश**—विधेः= "विधिर्विधाते दैवेच" इत्यमरः। "विधाता विश्वमृड् विधिः" इत्यमरः। कीनाशः= "कीनाशः कर्कशे क्षुद्रे कृतान्तोपांशुघातिनः" इति विश्वः। "अतिथिर्ना गृहागते" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—विधेहि= वि+धा+लोट्-सिप्-हि। विपक्त्रिमाः= वि उपसर्ग पूर्वक पच् धातु से "ड्वितः क्त्रिः" सूत्र से क्त्रि प्रत्यय होने पर "क्त्रेर्मम्नित्यम्" सूत्र से मम् का आगम होकर विपक्त्रिम शब्द सिद्ध होता है। निपातनीया= नि उपसर्गपूर्वक पत् धातु से णिच् प्रत्यय होकर अनीयर् प्रत्यय होकर निपातनीयः शब्द रूप सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—इसलिये विधाता के आदेश का उल्लंघन करने वाले इस शिशुपाल को (संसार की मर्यादा तोड़ने वाले को) आप यमराज के घर का मेहमान बनाइये अर्थात् इसे मार दीजिए। क्योंकि अशुभ आचरण से परिपक्व आपत्ति वाले दुष्ट सज्जनों के मारने योग्य होते हैं।

यहाँ सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तर न्यास अलंकार है। यहाँ नारदजी श्रीकृष्ण भगवान को दुष्ट शिशुपाल को मारने के लिए कहते हैं, और सामान्य अर्थ से समर्थन में कहते हैं कि दुराचारी सज्जनों से मारने योग्य ही होते हैं। इसलिए यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

अथ दुष्ट निग्रहे शिष्टानुग्रहोऽपि स्यादित्याह—

हृदयमरिवधोदयादुदूढद्रिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य।
धनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुत परिरम्भ निपीऽनक्षमत्वम् ॥७४॥

**अन्वयः**—अरिवधोदयात् उदूढद्रढिम पुरन्दरस्य हृदयं पुनः घनपुलक पुलोमजाकुचाग्रद्रुत परिरम्भनिपीडनक्षमत्वम् दधातु।

**संस्कृतभावार्थः**—शत्रुविनाशलाभात् धृढतां धारयित्वा इन्द्रस्य हृदयं पुनः शचिकुचाग्रालिङ्गननिपिडनसहत्वम् धारयतु। पूर्व शिशुपालभयात् त्यक्त भोगेन्द्रेण भवत्प्रसादान्निष्कंटक स्वर्गराज्यं पुनः उपभुज्यताम्।

**व्याख्या**—अरेः वध अरिवधः स एवोदयस्तस्मात् अंरिवधोदयात्= शत्रुविनाशलाभात्, रिपुनाशरूपाभ्युदयात्। उदूढद्रढिम= धृतदृढत्वम्। अवाप्तद्रढिमे ति पाठे प्राप्तदृढत्वमित्यर्थः। (उदूढद्रढिमा येनतत् उदूढद्रढिमा) पुरन्दरस्य= पुरः शत्रु पुराणि दारयतीति पुरन्दरस्तत्य पुरन्दरस्य= इन्द्रस्य। हृदयं= चितम्, वक्षस्थलम् वा। पुनः= भूयः। घनपुलकपुलोमजा कुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्= घनःपुलको ययोस्तौ घनपुलकौ, कुचयोः अग्रौ कुचाग्रौ, पुलोम्नजाता पुलोमजा, पुलोमजायाः कुचाग्रौ पुलोमजाकुचाग्रौ, घनपुलकौ च तौ पुलोमजाकुचाग्रौ, घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रौ। तयोः द्रुतं यः परिरम्भः (आलिङ्गगनम्) तेन तत्र वा निपीडनम् तस्य क्षमत्वं तत्तथाभूतम्, घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्= अतिरोमाञ्चशचिस्तनाग्रत्वरितालिङ्गनपीड़न सहत्वम्। दधातु धारयतु, वहतु।

**कोशः**—पुरन्दरः-"वृद्धश्रवा सुनासीरः पुरुहूतः पुरन्दर" इत्यमरः। "पुलोमजा शचीन्द्राणी" इत्यमरः। "घनं निरन्तरं सान्द्रम् पेलवं विरलं तनु" इत्यमरः। "स्तनौ कुचौ" इत्यमरः। "परिरम्भ परिष्वङ्गसंश्लेषं उपगूहनम्" इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—उदूढ—उत् उपसर्ग पूर्वक वह् धातु से क्त प्रत्यय तथा वह् धातु के व को सम्प्रसारण होकर उद् उहत ऐसी अवस्था में "हो ढः" सूत्र से 'ह' को ढ तथा "झषस्तथोर्धोधः" सूत्र से त के स्थान पर ध तथा ष्टुत्व होकर उद् + उढ + ढ यह अवस्था होती है "ढोढेलोप" सूत्र से ढ का लोप तथा ढलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः" सूत्र से दीर्घ होकर उदूढ़ रूप सिद्ध होता है। द्रढिमा-दृढ शब्द से "पृथ्वादिम्य इमनिच्वा" सूत्र इमनिच् प्रत्यय होकर दृढ, दृढ़स्यभावः इस अर्थ में होता है। प्रत्यय होने पर "र ऋतो हलादेर्लधोः" सूत्र से ऋ के स्थान पर र आदेश होकर द्रढिमन् जो प्रथमा एकवचन में

द्रढ़िम रूप सिद्ध होता है। पुरन्दरः= पुरः दारयति इस अर्थ में "पूःसर्वयोर्दारिसणेः" सूत्र से खच् प्रत्यय, खच् प्रत्यय होने पर पू को ह्रस्व होकर पु हो जाता है "वाचंयमेपुरन्दरौच" सूत्र से निपातनात् अदन्तत्वात् मुमागम होकर पुरन्दर रूप बनता है। दधातु—धारणार्थक 'धा' धातु से लोट् लकार आने पर प्रथम पुरुष एक वचन में दधातु सिद्ध होता है।

**हिन्दी**—शत्रु वध के कारण दृढ़ता को प्राप्त इन्द्र का वक्षस्थल फिर अत्यन्त रोमाञ्चित इन्द्राणी के स्तन के अग्रभागों के शीघ्र आलिङ्गन से उत्पन्न पीड़ा को सहन करने की क्षमता को धारण करे।

**अलङ्कार**—काव्यलिङ्ग, अतिशयोक्ति, वृत्यनुप्रास, तीनों की संसृष्टि। यहाँ "उदूढ़द्रढिम" विशेषण से प्राप्त होने वाली निपीडन क्षमता के प्रति उदूढद्रढिमा को हेतु बताया गया है इसलिए यहाँ पदार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार है। हृदयनिपीड़न सम्बन्ध से असम्बन्ध का कथन होने से अतिशयोक्ति अलंकार है। वृत्यनुप्रास अलंकार भी है। इन तीनों से संसृष्टि है।

**छन्दः—पुष्पिताग्रा—**

लक्षणम्—"अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजिच नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा"।

जिस छन्द की प्रथम पंक्ति में क्रमशः नगण, नगण, रगण, यगण, नगण, जगण, जगण, तथा रगण और अन्त में गुरु हो उसे पुष्पिताग्रा छन्द कहते हैं।

नगण नगण रगण यगणं नगण जगण जगण रगण गु.

III III SIS ISS III ISI ISI SIS S

हृदय मरिव धोदया दुदूढ द्रढिम दधातु पुनः पु रन्दर स्म

III III SIS ISS III ISI ISI SIS गु. (S)

धनपु पुलकपु लोमजा कुचाग्र द्रुतप रिरम्भ निपीड नक्षम त्वम्

इन्द्र सन्देशं कथयित्वा नारद स्वर्ग प्रस्थितेसति शिशुपालं प्रति श्रीकृष्णस्य क्रोधं दर्शयति—

ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्य वाचंनभ
तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति।
शत्रुणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति,
व्योम्नीव भ्रकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ॥७५॥

**अन्वयः**—तस्मिन् सुरमुनौ इति वाचम् व्याहृत्य नभः उत्पतिते पुरः इन्दोः श्रियम् बिभ्रति (सति) अथ ओम् इति उक्तवतः चैद्यं प्रति क्रुद्धस्य शार्ङ्गिणः वदने व्योम्नि इव अनिशं शत्रूणाम् विनाशपिशुनः केतुः भ्रकुटिच्छलेन आस्पदम् चकार।

**संस्कृतभावार्थः**—तास्मिन् नारदे इति वचनं कथयित्वाकाशे गते सम्मुखे चन्द्रकान्ति बिभ्रति सति बाढ़म् इति कथयतः शिशुपालं प्रति कोधितस्य श्रीकृष्णस्य मुखे आकाशे इव शत्रूणाम् उच्छेदसूचकः केतुः भ्रूभङ्गव्याजेन स्वस्थानं चकार।

**व्याख्या**—तस्मिन् = पूर्वोक्ते। सुरमुनौ = सुरश्चासौ मुनि, सुरमुनिः तस्मिन् सुरमुनौ, सुराणांमुनिः सुरमुनिस्तस्मिन् सुरमुनौ वा = देवर्षौ, नारदे इत्यर्थः। इति = पूर्वोक्तम्। वाचम् = वाणीम्। व्याहृत्य = कथयित्वा, अभिधाय। नभः = अम्बरम्, आकाशम् वा। उत्पतिते = समुद्गते। पुरः = अग्रे। इन्दोः = चन्द्रमसः, शशांकस्य। श्रियम् = शोभाम्। विभ्रति = धारयति (सति) अथ = इन्द्रसन्देशं श्रवणानन्तरम्, नारदवाक्यानन्तरम्। ओम् इति = तथास्तु भवतु। उक्तवतः = स्वीकृतवतः, कथितवतः। चैद्यम् = चेदीनाम् जनपदानां अयं चैद्यः तम् चैद्यम् = चेदीदेशाधिपतिम्, शिशुपालं प्रति इत्यर्थः। क्रुद्धस्य = कुपितस्य,। क्वचिद् "क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति" इत्यस्य स्थाने "कर्त्तुमंतिंसंयति" इति पाठ उपलभ्यते, तत्र संयति = युद्ध विषये मतिं कर्तुः = इच्छा विधातुरित्यर्थो ज्ञेयः। शार्ङ्गिणः = श्रृङ्गस्य विकारः शार्ङ्गम्, शार्ङ्गम् अस्यास्तीति शार्ङ्गिन् तस्य शार्ङ्गिणः = शार्ङ्गिपाणेः भगवतः श्रीकृष्णस्य। वदने = मुखे। व्योम्नि इव = आकाशे इव। अनिशं = सततम्, सर्वदा। शत्रूणाम् = रिपूणाम्। विनाशपिशुनः = विनाशाय पिशुनः, विनाशपिशुनः = विनाशसूचकः, उच्छेदसूचकः वा। केतुः = केतोनामोत्पातविशेषः, दुष्टग्रहः। भ्रकुटिच्छलेन = भ्रकुटेः छलं भ्रकुटिच्छलं तेन भ्रकुटिच्छलेन अथवा भ्रुवःया कुटिः सैवछलं तेन भ्रकुटिच्छलेन = भ्रुभङ्गव्याजेन। आस्पदं = स्थानं, स्थितिम्। चकार = कृतवान्।

**कोश**—"ओम् प्रश्नेङ्गिकृतौरोषे" इति विश्वः। व्योम्नि = "व्योम पुष्कर मम्बरम्" इत्यमरः। केतुः "केतुद्युतौ पताकायां महोत्पातरिलक्ष्मसु" इत्यमरः। "पिशुनौ खलसूचकौ" इत्यमरः। "प्रतिष्ठाकृत्वमास्यदम्"इत्यमरः।

**व्याकरणम्**—व्याहृत्य = वि आङ्उपसर्ग, हृ धातु क्त्वा प्रत्यय तथा उपसर्ग पूर्व होने से क्त्वा के स्थान ल्यप् प्रत्यय होने पर व्याहृत्य शब्द बनता है। उक्तवतः वचनार्थ ब्रूञ् धातु से क्तवतु प्रत्यय होने पर ब्रूञ् के स्थान पर 'वच' आदेश हो जाता है और वच् के वकार के स्थान पर 'उ' होजाने पर उच् + तवत् यह अवस्था आने पर च् को क् होकर उक्तवत् रूप बनता है। विभ्रति—भृ + कर्त्तरि शतृ-"अभ्यस्तत्वान्नुमभावः"। **क्रुद्ध**—क्रुध् + कर्त्तरिक्तः। आस्पदम्—"आस्पदे प्रतिष्ठायाम्" सूत्र से निपातनात्सुडागमः। चैव्यम् = चेदि शब्द से "वृद्धेत्कौसला जादाञ्ज्यङ्" सूत्र, ञ्यङ् प्रत्यय होकर चैद्यम् रूप बनता है। चकार—कृ + लिट्-तिप्-णल्।

**हिन्दी**—इस प्रकार इन्द्र का सन्देश कहकर देवर्षि नारद के आकाश में चले जाने, और सामने चन्द्रमा की शोभा को धारण कर लेने पर "ऐसा ही होगा" इस प्रकार कहने वाले तथा शिशुपाल के प्रति क्रोधित श्रीकृष्ण के मुख पर, जिस प्रकार आकाश में शत्रुओं का विनाशसूचक केतु (उत्पात चिन्ह) रहता है उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की टेढी भृकुटियों में मानो केतु ने स्थान ग्रहण कर लिया हो।

**टिप्पणी**—(१) भगवान् भाष्यकार ने कहा है कि शास्त्र (ग्रन्थ) के प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त में मंगल सूचक वाक्य या शब्द होने चाहिए। कवि ने अथ तथा ओम् मंगल वाची शब्द सर्ग के अन्त में देकर मंगलाचरण का निर्वाह किया है। यथा—

"ओङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ।" इति

(२) दण्डी ने काव्यादर्श में कहा है—

**सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृतैः सुसन्धिभिः।**
**सर्वत्र भिन्नसर्गान्तैरूपेतं लोकरञ्जकम्॥ इति**

सर्ग के अन्त में वृत्त भेद होना चाहिए। कवि ने सर्गान्त में शार्दूलविक्रीतम् छन्द का प्रयोग कर दण्डी की कथनी को पूर्णतया पालन किया है।

**विशेष**—ज्योतिष शास्त्रानुसार यदि चन्द्रमा के सामने केतु का उदय होता है तो वह राजाओं के विनाश का सूचक होता है। कहा भी गया है—"चन्द्रमभ्युत्थितः केतुः क्षितीशानां विनाशकृत्।

**अलङ्कार**—उपमा, अपह्नुति, निदर्शना—इन सबका परस्पर संकर। "व्योम्नि इव वदने" उपमालंकार है। "भ्रकुटिच्छलेन केतुः" में अपह्नुति अलंकार है। "इन्दोःश्रियंविभ्रति" इस पंक्ति द्वारा चन्द्रमा की शोभा को धारण करते हुए नारद का वर्णन है, परन्तु नारद चन्द्रमा की शोभा को धारण नहीं कर सकते, केवल उसके समान शोभा को धारण करते हैं, अतः यहाँ निदर्शना अलंकार है। इन सभी का परस्पर संकर होने के कारण 'संकर' है।

**छन्दः**—इस सर्ग का श्लोक शार्दूल विक्रीड़ित है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—

"सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूल विक्रीडिम्" इति

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १९ अक्षर हों, १२ और ७ पर यति हो। प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण एवं अन्त में गुरु हो, तो वह शार्दूलविक्रीड़ितम छन्द होता है।

इति जयपुरमण्डलान्तर्गत नायन ग्राम निवासिना श्री चौथमलत्रिवेदीनाम् पुत्रेण कैलाशचन्द्र त्रिवेदिना विरचितायां माघकवि प्रणीत शिशुपालवधमहाकाव्यस्य निधि-व्याख्यायां प्रथमः सर्गः समाप्तः॥

■ ■ ■

## संस्कृत की उपयोगी पुस्तकें

| | |
|---|---|
| संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी राजस्थानी शब्दकोश | डॉ. हर्षदेव माधव |
| संस्कृत में नैतिक शिक्षा एवं राष्ट्रीय चेतना | डॉ. भीमराज शर्मा |
| संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ साहित्यकार | डॉ. भीमराज शर्मा |
| संस्कृत सूक्ति वैभवम | डॉ. शंकरलाल शास्त्री |
| An Opening window to Sanskrit language | Dr. Girija Shanker |
| संस्कृत वक्तव्यम् | आचार्य दयारामदास |
| वैदिक साहित्य का इतिहास | डॉ. आचार्य भेषराज शर्मा |
| संस्कृत साहित्य का इतिहास | डॉ. राकेश कुमार जैन |
| संस्कृत भाषा का इतिहास | श्रीमती मंजु शर्मा |
| अलंकारशास्त्रेतिहासः | डॉ. रामकुमार दाधीच |
| अलंकारशास्त्र का बृहत् इतिहास | रमेशचन्द्र घुसिंगा |
| संस्कृत शब्द धातुरूपावली | डॉ. मुरारी लाल शर्मा |
| रूपचन्द्रिका ( शब्द एवं धातुरूपों का संग्रह ) | संजय कुमार जैन |
| अद्भूत धातुरूपावली | डॉ. बोध कुमार झा |
| प्रोढ़ मनोरमा | डॉ. बैद्यनाथ झा |
| लघुसिद्धान्त कौमुदी ( सम्पूर्ण ) | डॉ. जगदीश प्रसाद |
| संस्कृत रचनानुवाद कौमुदी | डॉ. शिवबालक द्विवेदी |
| प्रोढ़-निबन्ध सौरभम् | विश्वनाथ मिश्र |
| संस्कृत -निबन्ध-पीयुषम् | डॉ. कृष्णगोपाल जांगिड |
| संस्कृत-निबन्ध रत्नाकर | डॉ. शिवबालक द्विवेदी |
| संस्कृत व्याकरण | सरोजनी कुलश्रेष्ठ |
| संस्कृत व्याकरण अनुवाद चन्द्रिका | कल्याण सहाय शर्मा |
| संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका | पं. गेय कुमार झा |
| संस्कृत व्याकरण एवं छन्दोज्ञान | रमेशचन्द्र घुसिंगा |
| मुद्राराक्षस | डॉ. निरंजन मिश्र |
| अभिज्ञानशाकुल्तलम् | डॉ. शिवबालक द्विवेदी |
| उत्तररामचरितम् | डॉ. शिवबालक द्विवेदी |
| मृच्छकटिकम् | डॉ. शिवबालक द्विवेदी |
| रत्नावली नाटिका | डॉ. शिवबालक द्विवेदी |
| कर्णभारम् | डॉ. राकेश कुमार जैन |
| काव्यप्रकाश | डॉ. सीताराम दोतोलिया |
| काव्यलंकार | डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी |
| वेदान्तसार | डॉ. लम्बोदर मिश्र |
| गौतमधर्म सूत्राणि | डॉ. प्रभाकर शास्त्री |
| मूल रामायण | आचार्य भेषराज शर्मा |

**हंसा प्रकाशन**

57, नाटाणी भवन

मिश्र राजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार

जयपुर – 302 001 (राज.)